आदमियों में से हैं। आपने एक-एक करके अपना दो बार विवाह किया। पहली स्त्री दो लड़के छोड़कर परलोक सिधार गई। वे दोनों लड़के अब सयाने हुए और कलकत्ते के किसी कालेज में पढ़ते हैं। दूसरी स्त्री दो छोटी-छोटी कन्यायें छोड़, लगभग एक वर्ष हुआ, मर गई। घर में अब केवल गिरीश की एक मात्र बुआजी हैं। वे ही कन्याओं का लालन-पालन करती हैं।

थोड़ी देर बाद भट्टाचार्यजी बाहर आये। इतनी देर में उन्होंने हाथ-मुँह धोकर एक कमीज़ पहन ली थी। हाथ में हुक्का लिये हुए तख्त पर गिरीश के पास ही आकर बैठ गये। बोले—"अच्छा, अब कहो, क्या बात है?" यह कहकर वह हुक्का पीने लगे।

गिरीश ने कहा—"अच्छा, भट्टाचार्य दादा, हम लोग जो स्वप्न देखते हैं उसका क्या अर्थ है? आज-कल की पुस्तकों में लिखा है कि स्वप्न केवल कल्पना पर निर्भर है। क्या यह सच है?"

भट्टाचार्यजी ने सोचा, निश्चय ही इस मनुष्य ने कोई बुरा स्वप्न देखा है—कोई शान्तिकार्य कराना पड़ेगा। बोले—"बड़े आश्चर्य की बात है। स्वप्न कल्पना पर कैसे निर्भर हो सकता है? ज़रा अपने शास्त्रों को तो खोलकर पढ़ो। श्रीब्रह्मवैवर्त्त-पुराण में स्वप्न-दर्शन पर कई बड़े-बड़े अध्याय हैं। बिना कहे रहा नहीं जाता। स्वप्न को कल्पना पर ठहराना ईसाइयों का

मत है"—घृणापूर्वक इतना कहते हुए भट्टाचार्यजी की भौंहे सिमट गईं।

गिरीशचन्द्र चुपचाप कुछ सोचने लगे।

भट्टाचार्यजी कुछ देर तक स्वयं हुक्का पीते रहे। फिर गिरीश हाथों में चिलम देते हुए बोले—"क्यों, कोई स्वप्न देखा है?"

गिरीशचन्द्र ने कहा—"हां"।

भट्टाचार्यजी ने कहा—"यदि कोई दुःस्वप्न देखा है तो उसके लिए इतनी चिन्ता क्यों करते हो? शास्त्रों में विधा है। शान्ति कराने से सब दोष और विघ्न-बाधायें मि जाती हैं।"

गिरीश ने कहा—"भट्टाचार्य दादा, मैंने एक बड़ा ही अद्भुत स्वप्न देखा है।"

"क्या देखा?"

"बाबूपाड़े में रहनेवाले जगदीश बन्द्योपाध्याय की लड़की प्रभावती को आपने देखा है? तेरह-चौदह वर्ष की होगी।"

भट्टाचार्य ने कहा—"कौन? प्रभावती? देखा क्यों नहीं अभी उसी दिन जगदीश ने मुझ से कहा था कि "भट्टाचार्यजी आप दो-चार जगह जाकर मेरी-प्रभा के लिए 'वर' ढूंढ़ दीजिए। अब वह सयानी हो गई है।"

गिरीश ने बड़े आग्रह से कहा—"दादा, तब तो मेरे सा उसका विवाह ठीक करा दीजिए।"

इतनी बात सुनते ही भट्टाचार्यजी गिरीश के मुँह की ओ

बड़े विस्मय से देखने लगे। थोड़ी देर बाद बोले—"तुम फिर विवाह करोगे ? मैंने तो सुना था...... ...।"

गिरीश बीच ही में बोल उठे—"बहुत सोच-विचारकर मैं पहले हिचकता था। पहली स्त्री जिस समय मरी, तब दोनों लड़के बहुत छोटे थे। मेरी अवस्था भी उस समय अधिक न था। दूसरा विवाह किया। उसने आकर दोनों लड़कों को पाला-पोसा। किसी तरह की गड़बड़ी नहीं हुई। परन्तु अब दोनों लड़के सयाने हो गये हैं। आज न सही, कल उनका भी विवाह करना पड़ेगा। उनके लड़के-बच्चे होंगे। ऐसी दशा में यदि फिर मैं विवाह करूँ तो परिवार में बड़ी अशान्ति पैदा होने की संभावना है। इन्हीं सब बातों को सोच-समझकर विवाह न करना ही मैंने निश्चय किया था; परन्तु आज मैंने बड़ा अनोखा स्वप्न देखा।"

"क्या देखा ?"

"सबेरा होने से कुछ पहले मैंने स्वप्न देखा, मानों मेरी पहली स्त्री—नरेन्द्र-सुरेन्द्र की माँ—आकर बिछौने के पास बैठ गई। मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए वह बोली—'अब भी मैं तुमको भूली नहीं हूं। इसी से मैं फिर आई हूं। मैंने ही जगदीश के यहां प्रभावती होकर जन्म लिया है। उस बार मेरी कोई भी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। इस बार फिर तुम मुझ से विवाह करो। मैं आकर नरेन्द्र-सुरेन्द्र की बहुओं से लड़ाई-झगड़ा करूं।' इतना कहकर वह अदृश्य हो गई।"

गिरीश का गला, मुँह तथा नेत्रों का भाव इस समय इतना रल था कि इस बात के विश्वास करने में भट्टाचार्यजी को तनिक प्रकार का संदेह न हुआ। उन्होंने आश्चर्य से कहा—'क्या कह रहे हो?"

"मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूं।"

दोनों ही चुप हो गये। कुछ देर बाद भट्टाचार्य ने कहा, "बड़ा विलक्षण स्वप्न है।"

गिरीश ज़रा जोश से कहने लगे, "विलक्षण कुछ भी नहीं। हिसाब लगाकर देख न लीजिए। ठीक पन्द्रह वर्ष नरेन्द्र-सुरेन्द्र की माँ को मरे हुए। उसके एक वर्ष ही बाद प्रभा का जन्म हुआ।"

भट्टाचार्यजी ने कहा—"अच्छा ठहरो तो। जिस वर्ष मैं वृन्दावन गया था उसी वर्ष तुम्हारी स्त्री का स्वर्गवास हुआ था। तुम उस समय शोक से बहुत दुखी थे। तुमने भी मेरे साथ चलने की इच्छा प्रकट की थी; परन्तु न मालूम क्यों तुम न जा सके थे।"

"बुआजी बीमार हो गई थीं।"

"ऐसा ही होगा। मैं वृन्दावन किस वर्ष गया था"—यह कहकर मन ही मन हिसाब लगाते-लगाते भट्टाचार्यजी उँगलियों पर गिनने लगे। अंत में बोले, "ठीक तो है। ठीक पन्द्रह वर्ष हुए। उसके बाद, प्रभावती का जन्म कब हुआ? ग्यारह महीने मैं वृन्दावन रहा, एक महीना काशीजी में। घर आकर

सुना कि जगदीश की स्त्री को प्रसव वेदना हो रही है। वह मुझसे मंत्र पढ़वाकर पानी ले गया था। तभी प्रभा हुई थी। भाई, तुम्हारा हिसाब तो ठीक रहा, ज़रा भी अन्तर नहीं पड़ा — आश्चर्य" ! कहकर भट्टाचायजी दाँतों तले उँगली दाब कर रह गये।

गिरीश धीरे-धीरे फिर कहने लगे— 'और भी एक आश्चर्य की बात सुनिए। मेरी दूसरी स्त्री को मरे प्रायः एक वर्ष हुआ। इस बीच में कितनी ही बार मुझ से बुआजी ने कहा होगा— 'बेटा, मैं बूढ़ी हुई। न जाने कब मर जाऊँ। तुम फिर विवाह कर अपना घर-बार देखो।' मैं बराबर उत्तर देता रहा—'बुआजी, इस उम्र में अब क्या विवाह करूं। आपके आशीर्वाद से नरेन्द्र-सुरेन्द्र चिरंजीव रहें। अब मुझ से विवाह करने को न कहो'। बुआजी कहतीं —'मेरे सिर में जितने बाल हैं, नरेन्द्र-सुरेन्द्र उतने वर्ष के हों। किन्तु उनके विवाह में तो अभी एक-आध वर्ष की देर है। तब तक यदि मैं न रही तो बहुओं को कौन सम्हालेगा? एक अच्छी सी सयानी लड़की देखकर विवाह कर लो तो तुम्हारा परिवार सुख से रहेगा।' उन्होंने बहुत कुछ समझाया; पर अब तक मैंने उनकी एक न सुनी। परसों के दिन, गङ्गाजी स्नान कर, मैं बाबूपाड़े होकर आ रहा था। देखता हूं कि प्रभावती अपने मकान के सामनेवाले बगीचे में नींबू के पेड़ की एक डाली में हाथ डाले खड़ी है। बहुत दिनों से उसे देखा नहीं था। अब तो वह बहुत सयानी हो गई है।

एक सुन्दर रंगीन साड़ी पहिने थी। स्नान कर चुकी थी। भीगे हुए बाल पीठ पर लटक रहे थे। उसे देखते ही सहसा बुआजी की बात मुझे स्मरण हो आई। 'यही तो वह लड़की है। अच्छी और सयानी भी है। इससे यदि विवाह कर लूं तो बुआजी बहुत ही खुश होंगी।' सोचता हुआ घर आया। दादा, अब आप से क्या छिपाऊं। सारा दिन न जाने चित्त की कैसी चंचल दशा रही। मन ही मन लज्जित होता था। सोचता था, बुढ़ापे में यह कौनसा नया रोग पैदा हुआ केवल उसी की याद आती थी। उसके बाद प्रातःकाल यह स्वप्न देखा। अब यह मेरी समझ में नहीं आता कि दादा, अचानक मेरी इच्छा ऐसी क्यों हो गई। उस समय मैं यह थोड़े ही जानता था कि नरेन्द्र-सुरेन्द्र की मां ने ही प्रभावती होकर फिर से जन्म लिया है।"

भट्टाचार्यजी चुपचाप बैठे गिरीश की बातें सुन रहे थे। बात समाप्त होने पर भी वह कुछ देर तक उसी तरह बैठे रहे।

कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद गिरीश ने फिर पूछा— 'ऐसी स्थिति में आपकी क्या राय है?"

भट्टाचार्यजी ने कहा—"स्वप्नतत्व बड़ा ही गूढ़ है। मुझे एक श्लोक याद आता है, अच्छा ठहरो"—कहकर वह उठे और भीतर चले गये।

शास्त्र-व्याख्या

सवेरा अच्छी तरह हो गया। सूर्य भगवान संसार को दर्शन देना ही चाहते हैं। रास्ते पर यह बैठका है। खिड़की के दरवाज़े से गिरीशचन्द्र रास्ते की ओर देख रहे हैं। कभी-कभी एक-दो आदमी रास्ते से निकल जाते हैं। एक अहीर का लड़का दो-चार गौवें लिये उधर से गाता जा रहा था—

"दिल से यह तेरी याद भुलाई नहीं जाती"

रास्ता चलनेवालों में से एक ने कहा—"दुष्ट लड़का!"

इसी बीच में भट्टाचार्यजी वापस आ गये। उनके बाईं ओर बगल में एक पोथी थी और दाहने हाथ में हुक्का। बैठके में आकर गिरीश को चिलम देते हुए कहा—'लो, पिओ।' इसके बाद तख्त पर बैठकर उन्होंने कमीज़ की जेब से चश्मा निकाला और आँखों पर उसे लगाते हुए पोथी के पन्ने उलटते-पलटते एक स्थान पर रुककर देखने लगे।

गिरीश चिलम पीते हुए उत्सुकता से भट्टाचार्यजी की ओर देख रहे थे।

कुछ देर बाद भट्टाचार्यजी उत्तेजित स्वर से बोल उठे—"अच्छा, स्वप्न देखने के कितनी देर बाद तुम उठे थे।"

"उसी समय। उधर वह अदृश्य हुई, इधर मैं जाग पड़ा। उसके बाद हाथ-मुँह धोने में जो देर लगी हो। बस, सीधा आप ही के पास चला आया।"

भट्टाचार्यजी बैठे हुए कुछ देर तक सोचते रहे। अन्त में गम्भीरता से बोले—"गिरीश, तुम वचन दो।"

"क्या वचन दूं?"

"यह वचन दो कि यदि मैं तुम्हारा विवाह करा दूं तो तुम मुझे भूलोगे नहीं।"

भट्टाचार्यजी का कांपता हुआ स्वर और भाव देखकर गिरीश को बड़ा आश्चर्य हुआ। बोले—"क्यों दादा, ऐसी बात क्यों कहते हो? आपको कैसे भूल जाऊंगा? विवाह हो अथवा न हो।"

भट्टाचार्यजी ने कहा—"इस प्रकार भूलने की बात नहीं कहता। यदि मैं यह विवाह करा सकूं और इसका परिणाम अच्छा हो तो तुम उस उपकार को भूल तो न जाओगे? मुझे इस विवाह का अधिष्ठाता जानकर यथासाध्य मेरा उपकार करोगे?"

यह बात सुनते ही गिरीश की छाती दस हाथ की हो गई। सोचने लगे, इस प्रकार के विवाह का फल निश्चय ही शास्त्रों में अत्यन्त शुभ लिखा है। बोले—"अच्छा भट्टाचार्य दादा, मैं वचन देता हूं कि आप की इस कृपा को मैं नहीं भूलूंगा।"

भट्टाचार्यजी गंभीर होकर कहने लगे—"यदि लक्ष्मी की तुम पर कृपा हो,—कृपा तो है ही, यदि इससे भी अधिक कृपा हो और वह कृपा दसगुनी, बीसगुनी, पचासगुनी हो—तो तुम मेरी दरिद्रता दूर करोगे ? बोलो।"

गिरीश को चक्कर आने लगा। इससे दसगुनी, बीसगुनी, पचासगुनी कृपा ! मामला क्या है ?

भट्टाचार्यजी ने झटपट फिर पूछा—"बोलो, क्या कहते हो ?"

गिरीश ने सावधान होकर इन शब्दों में कहना आरम्भ किया—"दादा, जैसा आप कहते हैं, यदि मेरे ऊपर लक्ष्मी की वैसी ही कृपा हो तो मैं आपका उपकार कभी नहीं भूलूंगा। आप साफ़-साफ़ यह बतलाइए, बात क्या है !"

भट्टाचार्यजी ने कहा—"बात बड़े मार्के की है। गिरीश इस विवाह के हो जाने से तुम राजा होगे।"

गिरीश ने एकदम चौंककर कहा—"क्या कहा, राजा होऊंगा !"

भट्टाचार्यजी ने गंभीरता से कहा—"राजा होगे। तुम्हारा भाग्य प्रबल है।"

"क्या यह बात शास्त्र में लिखी है !"

"हां, लिखी है। भट्टाचार्यजी ने हाथ की पोथी का इधर उधर उलटते-पलटते कहा—"यह श्रीब्रह्मवैवर्त्तपुराण है। कोई मामूली पुस्तक नहीं है। इसमें जो लिखा है वह सुनो।"

"उसी समय। उधर वह अदृश्य हुई, इधर मैं जाग पड़ा। उसके बाद हाथ-मुँह धोने में जो देर लगी हो। बस, सीधा आप ही के पास चला आया।"

भट्टाचार्यजी बैठे हुए कुछ देर तक सोचते रहे। अन्त में गम्भीरता से बोले—"गिरीश, तुम वचन दो।"

"क्या वचन दूं?"

"यह वचन दो कि यदि मैं तुम्हारा विवाह करा दूं तो तुम मुझे भूलोगे नहीं।"

भट्टाचार्यजी का कांपता हुआ स्वर और भाव देखकर गिरीश को बड़ा आश्चर्य हुआ। बोले—"क्यों दादा, ऐसी बात क्यों कहते हो? आपको कैसे भूल जाऊंगा? विवाह हो अथवा न हो।"

भट्टाचार्यजी ने कहा—"इस प्रकार भूलने की बात नहीं कहता। यदि मैं यह विवाह करा सकूं और इसका परिणाम अच्छा हो तो तुम उस उपकार को भूल तो न जाओगे? मुझे इस विवाह का अधिष्ठाता जानकर यथासाध्य मेरा उपकार मानोगे?"

यह बात सुनते ही गिरीश की छाती दस हाथ की हो गई। सोचने लगे, इस प्रकार के विवाह का फल निश्चय ही शास्त्रों में अत्यन्त शुभ [illegible] ... [illegible] भट्टाचार्य दादा, मैं वचन [illegible] ... को मैं नहीं

भट्टाचार्यजी गंभीर होकर कहने लगे—"यदि लक्ष्मी की तुम पर कृपा हो,—कृपा तो है ही, यदि इससे भी अधिक कृपा हो और वह कृपा दसगुनी, बीसगुनी, पचासगुनी हो—तो तुम मेरी दरिद्रता दूर करोगे ? बोलो।"

गिरीश को चक्कर आने लगा। इससे दसगुनी, बीसगुनी, पचासगुनी कृपा ! मामला क्या है ?

भट्टाचार्यजी ने झटपट फिर पूछा—"बोलो, क्या कहते हो ?"

गिरीश ने सावधान होकर इन शब्दों में कहना आरम्भ किया—"दादा, जैसा आप कहते हैं, यदि मेरे ऊपर लक्ष्मी की वैसी ही कृपा हो तो मैं आपका उपकार कभी नहीं भूलूंगा। आप साफ़-साफ़ यह बतलाइए, बात क्या है !"

भट्टाचार्यजी ने कहा—"बात बड़े मार्के की है। गिरीश, इस विवाह के हो जाने से तुम राजा होगे।"

गिरीश ने एकदम चौंककर कहा—"क्या कहा, राजा होऊंगा !"

भट्टाचार्यजी ने गंभीरता से कहा—"राजा होगे। तुम्हारा भाग्य प्रबल है।"

"क्या यह बात शास्त्र में लिखी है ?"

"हां, लिखी है। भट्टाचार्यजी ने हाथ की पोथी का इधर-उधर उलटते-पलटते कहा—"यह श्रीब्रह्मवैवर्त्तपुराण है। कोई मामूली पुस्तक नहीं है। इसमें जो लिखा है वह सुनो।"

इतना कहकर वे पढ़ने लगे—

"दिव्या स्त्री यं प्रवदति मम स्वामी भवान् भव।
स्वप्ने दृष्ट्वा च जागर्ति स च राजा भवेद् ध्रुवम्।"

श्लोक पढ़ चुकने के वाद पुस्तक गिरीश को दे दी।

गिरीश पुस्तक हाथ में लेकर उसे तीव्र दृष्टि से पढ़ने की चेष्टा करने लगे।

भट्टाचार्यजी ने अपना चश्मा उतारकर उन्हें दिया। चश्मा लगाकर गिरीश ने दो-तीन वार श्लोक पढ़ा। कुछ-कुछ संस्कृत वे जानते थे। पढ़ने के वाद उन्होंने पूछा—"इसका अर्थ क्या है, दादा?"

"इसका भी अर्थ नहीं समझे? विलकुल स्पष्ट तो है। अच्छा, सुनो अन्वय करता हूं"। कहकर भट्टाचार्यजी ने खूब जोर से हुलास सूंघी। चश्मा आंख में लगाकर कहने लगे—"दिव करते हैं स्वर्ग को, समझे? उसमें स्त्रियं प्रत्यय लगने से दिव्य होता है। दिव्या स्त्री—अर्थात् स्वर्ग जो गई ऐसी स्त्री, यं प्रवदति—जिससे कहे, मम स्वामी भवान् भव—तुम मेरे स्वामी होवो, अर्थात् मुझ से विवाह करो, ऐसा स्वप्न देखकर स्वप्ने दृष्ट्वा च जागर्ति—जाग उठे, ऐसा होने से ध्रुवं अर्थात् निश्चय ही, स च राजा भवेद्—वह राजा होता है। इति श्रीब्रह्मवैवर्त्तपुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे सुस्वप्नदर्शनाध्याय।"

गिरीश ने पुस्तक के लिए हाथ वढ़ाया। उसे लेकर श्लोक फिर पढ़ा। दूसरी ओर देखकर, एक मिनट तक सोचने लगे

याद, बोले—"हां, भट्टाचार्य दादा, दिव्या स्त्री का अर्थ देवकन्या नहीं है ?"

भट्टाचार्यजी ने सिर हिलाकर कहा—"स्त्री का अर्थ कन्या ? कौन से पाठशाला में पढ़ा था ? पागल !" यह कहकर वह हँसने लगे।

गिरीशचन्द्र का सिर चक्कर खाने लगा। नेत्रों में पानी भर आया। उन्होंने पूछा—"तो जो आपने कहा वह ठीक होगा भट्टाचार्य दादा ?"

भट्टाचार्यजी ने दृढ़ता से कहा—"होगा नहीं—निश्चय होगा ! पुस्तक किसकी लिखी है ? किसी ऐरे-गैरे की नहीं, स्वयं भगवान् श्रीवेदव्यासजी की लिखी हुई है। क्या यह भी मिथ्या हो सकती है ? जिस दिन भगवान् वेदव्यास की वाणी मिथ्या होगी उस दिन पृथ्वी उलट जायगी।"

इसके बाद दोनों में बहुत देर तक परामर्श होता रहा। भट्टाचार्यजी ने प्रतिज्ञा की कि वह आज ही जगदीश के घर जाकर विवाह का प्रस्ताव करेंगे। गिरीश ने बड़े भक्तिभाव से उनकी चरण-रज माथे में लगाकर उनसे विदा मांगी।

असम्भव कथा

सप्ताह के भीतर ही विवाह निश्चय हो गया। जगदीश वन्द्योपाध्याय पहले तो भट्टाचार्यजी के प्रस्ताव पर राजी न हुए। जैसे-तैसे वे राजी हुए तो उनकी स्त्री अड़ गई। कहने लगी—"आग लगे उस मुँह में, जिससे वह ऐसी वात कहते हैं। तीन पन वीत चुके, चौथा वाकी है। यम के दूत तो ले जाने का रास्ता देखते हैं, फिर भी विवाह का शौक़ वना ही है। विवाह का नाम लेते लज्जा भी नहीं आती। रुपये पास में हैं इसी से न? रुपये में शहद लगाकर चाटें।"

वन्द्योपाध्याय की स्त्री चाहे जो कुछ कहे; पर वास्तव में रुपये में वड़ी शक्ति है। वह शक्ति वड़े से वड़ा काम करा सकती है। जगदीश गिरीश से ऋण लेते थे। उनका मकान भी गिरीश के यहाँ रेहन था। इस विवाह के होजाने से वे ऋण-मुक्त हो जायँगे। मकान भी उनको वापस मिल जायगा। इसके अतिरिक्त कन्या के विवाह में उनको कुछ भी खर्च न करना पड़ेगा। दोनों ओर का सारा खर्च गिरीश ही उठायेंगे। लड़की को दो हज़ार का गहना मिलेगा। इन्हीं सब प्रलोभनों में पड़कर विवश हो दोनों स्त्री-पुरुष राजी हो गये। यह सब वातें एक

बातचीत अथवा एक दिन में नहीं तय हुई। सुबह शाम कई दिन लगातार भट्टाचार्यजी को गिरीश के घर से प्रभावती के घर और प्रभावती के घर से गिरीश के घर जाना पड़ा।

इधर कई दिनों से बराबर गिरीश प्रभावती के रूप का ध्यान कर आनन्द-सागर में गोते लगाते रहे। उन्हें केवल स्त्री ही मिलने की खुशी न थी; किन्तु धनवान होने की भी खुशी थी। उनका विश्वास था कि इस विवाह के हो जाने से सच-मुच ही कोई न कोई राजा उन्हें गोद ले लेगा अथवा गवर्नमेण्ट अपने गज़ट की आगामी संख्या में उन्हें राजा की उपाधि प्रदान करेगी।

जिस दिन विवाह पक्का हुआ उस दिन गिरीश की बुआ के आनन्द की सीमा न रही। गिरीश को तरह-तरह के आशीर्वाद देने लगीं। दोनों कन्याओं से कहतीं, "तुम्हारी नयी मां आयेगी। वह बड़ी सुन्दर होगी। तुम सब को खूब प्यार करेगी। अच्छी-अच्छी चीज़ें खाने को देगी।" इत्यादि। बड़ी लड़की की अवस्था नौ वर्ष की थी। छोटी अभी चार ही वर्ष की थी। दादी के सामने तो वह दोनों कुछ न बोलीं। दूसरे दिन सबेरे एकांत में दोनों यों बातें करने लगीं—

चूनी ने कहा—"दीदी, क्या छचमुच हमाली नई मां आकर हम लोगों को खूब प्याल कलेगी ?"

पूनी ने कहा—"जो ऐसा ही होता तो भींखना ही काहे का था। पगली, कहीं सौतेली मां भी प्यार करती है ?

उठते-बैठते हम लोगों की नाक में दम करेगी। बात-बात में मारेगी।"

यह बात सुनते ही उदास होकर बूची कांपते हुए स्वर से कहने लगी, "मालेगी, लोज मालेगी ?"

पूटी ने उत्तर दिया—"मारेगी नहीं तो क्या पूजा करेगी ?"

"तुमने कैछे जाना ?"

"कल जब उस घर में खेलने गई थी तो मैंने सुना था। रंगा दीदी से उनकी मां यही बात कह रही थीं।"

इस पर बूची का मुँह उदास हो गया। बेचारी अनमनी होकर इधर-उधर घूमने लगी। थोड़ी देर में गिरीश बाबू गङ्गा स्नान करके लौटे और पूजा करने बैठा ही चाहते थे कि बूची ने आकर कहा—"बाबू, हमें नई मां न चाहिए, हमाली पुलानी मां ला दो।"

गिरीश बिना कुछ उत्तर दिये ही पूजा करने लगे पाठ करते-करते बीच-बीच में उनकी आंखों में जल भ[illegible] आता था। पूजा का सारा समय उन्हें सोच-विचार कर[illegible] ही बीता।

तीसरे पहर बैठके में गिरीशचन्द्र बैठे थे। इसी समय ए[illegible] व्यक्ति ने आकर कहा—"मुखोपाध्यायजी, प्रणाम।"

गिरीशचन्द्र ने सिर उठाकर देखा, बाबूपाड़े के सतीशद[illegible] हैं। बोले—"सतीश, आओ, बैठो।"

सतीशदत्त ग्रामीण स्कूल के सेकेण्ड पण्डित हैं। इसी गां[illegible]

के बाबूपाड़े में रहते हैं। बैठकर सतीश ने कहा—"जगदीश तो राजी हो गये। आपने सुना या नहीं?"

"हां, मैंने भी सुना है।"

"वह तो बाल की खाल निकालता था। राजी कैसे हुआ, कुछ जाना आपने? मैंने तो उससे पहले ही कहा था,—'दादा, ऐसा सुअवसर हाथ से न जाने देना। गिरीश जैसा दामाद मिलना आपकी सी स्थितिवाले मनुष्य के लिए कठिन ही नहीं, किन्तु असम्भव है।'"

गिरीशचन्द्र ने कहा—"वह तो एक प्रकार से राजी हो था; पर उसकी स्त्री नहीं राजी थी।"

सतीश ने कहा—"कुछ सुना फिर कैसे राजी हुई?"

गिरीश ने कहा—"नहीं, मैंने तो नहीं सुना। क्या बात हुई?"

सतीश—"आं! आपने नहीं सुना? बड़े आश्चर्य की बात है! मेरा विश्वास था कि आपने निश्चय ही सुना होगा।"

गिरीश उत्सुक नेत्रों से सतीश की ओर देखने लगे।

सतीश ने कहना आरम्भ किया—"प्रभावती, जिसके साथ आपका विवाह होगा, अबोध बालिका तो है ही नहीं; और आप भी अनभिज्ञ युवा पुरुष नहीं—मैं ठीक ही बात कहूंगा, कुछ खुशामद करने तो आया नहीं जो वैसी बात कहूं—आप अब बूढ़े हुए। ऐसी दशा में आपसे विवाह करने में उसे विशेष आपत्ति होना स्वाभाविक था। पर न मालूम क्यों उसने इसके

बिलकुल विपरीत कार्य किया। उसने जब देखा कि उसके मा-बाप यह विवाह करने में राजी नहीं हैं तो उसने खाना-पीना छोड़ दिया। इतना ही नहीं, वरन उसने अपनी एक सखी द्वारा अपनी मा से कहला दिया कि यदि मेरा विवाह उनके साथ न होगा तो मैं विष खाकर मर जाऊँगी।"

इतना कहकर सतीश ने अत्यन्त आश्चर्य प्रकट किया। इन बातों को सुनकर गिरीशचन्द्र को बड़ी खुशी हुई। पूजा के समय जो नाना प्रकार के तर्क-वितर्क पैदा हो रहे थे और उनके मन में विषाद छाया था वह इस प्रकार लोप हो गया जैसे चन्द्रमा की निर्मल चांदनी में अँधेरा। उन्होंने हँसकर पूछा:
"यह बात तुमने किस से सुनी ?"

"अपनी स्त्री से। इसके अतिरिक्त मैंने यह भी सुना है इन्हीं चार-पांच दिनों में उसका चेहरा, जो पहले बिलकुल काला पड़ गया था, आँखें गढ़े में चली गई थीं—अब माता-पिता के राजी हो जाने पर खिल उठा है—वह प्रसन्न है।"

कुछ समय तक दोनों ही चुप रहे। गिरीश भीतर ही भीतर मुसकराते और सतीश गाल पर हाथ रखे सोच रहे थे। थोड़ी देर बाद सतीश ने कहा—"कुछ समझ में नहीं आता, विधाता की लीला अपरम्पार है, वह न जाने इस संसार में क्या-क्या लीलायें किया करता है—"विस्तीर्णा पृथिवी जनोऽपि विविधः किं किं न सम्भाव्यते।"

गिरीश ने कहा—"क्या कहा, क्या कहा ? इसके मानी क्या

सतीश बोले—"मानो यही कि इस विराट संसार में सभी तरह के लोग हैं। इसलिए कोई बात असम्भव नहीं। अच्छा, इसका कारण कुछ बता सकते हो, गिरीश दादा?"

गिरीश चुपचाप मुसकराने लगे।

नौकर ने इतने ही में पान-तमाखू लाकर सामने रक्खा। गिरीश ने सतीश से कहा—"लीजिए।"

सतीश पान का बीड़ा और तमाखू लेते हुए धीरे धीरे कहने लगे "कुमारसंभव में महादेवजी के साथ विवाह करने के लिए सती पार्वती की घोर तपस्या का वर्णन है। इस समय उसीकी याद आती है। सती की ठीक यही अवस्था थी। उनका बिलकुल यौवनारंभ था। उधर महादेव की उम्र का कहना ही क्या! कुछ हिसाब ही नहीं था। फिर भी महादेव को प्राप्त करने के निमित्त सती की व्याकुलता महाकवि कालिदास ने कैसी वर्णन की है?"

गिरीश ने कहा—"ठीक ठीक।"

इसके पश्चात् प्रभा के बारे में बहुत देर तक दोनों में बातचीत होती रही। उसी सिलसिले में गिरीश ने जोश में आकर स्वप्नदर्शन तक की बात सतीश से कह डाली। सतीश यह पहले ही सुन चुके थे। किन्तु वे इस समय अनजान से बन गये। वे एकाएक चौंक पड़े और कहने लगे—"अब तो सब बात साफ हो गई। मैं आपसे कहता हूँ कि यदि यह बात आप मुझ से न बतलाते तो मैं यह

समझ ही न पाता कि आप पर प्रभा की अनुरक्ति का क्या कारण है। इसीसे तो कहता हूं कि इस संसार में सभी कुछ संभव है। हे दीनबन्धु, आपकी लीलायें विचित्र हैं!"

गिरीश ने उस दिन सतीश का भली भांति जलपान कराकर विदा किया।

पुरानी बातें

सतीशदत्त को विदा कर के गिरीशचन्द्र भीतर गये। वहां जाकर हाथ-मुँह धोने के बाद उन्होंने अपने नियम के अनुसार एक मात्रा अफीम की खाई। फिर बैठके में आकर पान खाने के बाद चदरा कंधे पर डाल और हाथ में छड़ी लेकर हवाखोरी के लिए घर से बाहर निकले। उनके घर के सामने ही एक छोटा सा बगीचा था। दूर न जाकर वह उसी में चले गये।

बगीचे में टहलते-टहलते गिरीश बाबू सतीश की कही बातों को सोचने लगे। चैत का निर्मल चन्द्रमा इस समय आकाश में अपना प्रभुत्व जमाये हुए है। धीमी-धीमी सुगंधित पवन रह-रहकर चलने लगती है। एकाएक गिरीश को पच्चीस वर्ष पहले की बात याद आई। पच्चीस वर्ष पूर्व जब

उनका पहला विवाह हुआ था तब वह प्रेम से विह्वल हो इसी बगीचे में टहलने लगते थे। गिरीश सोचने लगे, जिसकी बात मैं सोच रहा हूं वह तो फिर युवती के रूप में आ रही है; पर दुःख तो इसी बात का है कि मैं वही पुराना गिरीश का गिरीश ही बना हुआ हूं।

बगीचे के बीच में मौलसिरी का एक पेड़ है। अपनी सुगंध भेजकर मानो वह गिरीश को अपने समीप बुलाने की चेष्टा कर रहा है। धीरे-धीरे गिरीश उधर ही बढ़ने लगे। पेड़ के नीचे घोर अंधकार छाया हुआ है। उसी अंधकार में खड़े होकर वे मन ही मन युवावस्था का रस-भरा एक गीत गाने लगे।

"बिरह-दुख मोसों सहो न जाय।"

गाते ही गाते उनकी नाक घृणा से सिकुड़ गई। वह कहने लगे, अरे इन सब गानों का अब समय नहीं रहा। यह सब तो युवावस्था ही में अच्छे लगते थे।

यह सोचकर गिरीश वहां से चल दिये। एक पक्का चबूतरा बना हुआ था। उसके एक कोने को चद्दरे से साफ कर वह वहीं बैठ गये।

बैठे-बैठे सोचने लगे, क्या पूर्वजन्म की बातें मनुष्य को याद रहती हैं? नहीं नहीं, कदापि नहीं। इस कलिकाल में ऐसा होना सम्भव नहीं। किन्तु यह (प्रभा) तो यह कहती है कि यदि उनके साथ विवाह न होगा तो वह अन्य किसी के साथ विवाह

कहती हैं, रात तो हो गई, भोजन न कीजिएगा ?"

गिरीश ने क्रोधित होकर कहा—"जा, जा, इस समय दिक न कर।" नौकर के चले जाने पर वह फिर सोचने लगे। उस जन्म में तो उसे क्रोध और अभिमान बहुत ही था। अब इस जन्म में देखूं कि क्या दशा है। यदि इस बार भी वैसी ही दशा हुई तब तो बहुत ही बुरा होगा। एक दिन बात ही बात में उसने कहा था कि यदि मैं गई तो तुम दो महीने के भीतर ही दूसरा विवाह कर लोगे। मैंने कहा था, छिः छिः! ऐसी बुरी बात मुँह से न निकालो। यदि ऐसा हो भी, तो मैं तुम्हें भूलकर दूसरी स्त्री से विवाह कर नहीं सकता। ऐसा काम केवल विश्वासघातक और नराधम ही कर सकते हैं। परन्तु मेरा दूसरा ही नहीं, बल्कि तीसरा विवाह जानकर यदि वह मुझे खिझायेगी तो मैं कहूंगा कि तुमने यहां आकर फिर जन्म लेने को मुझसे कुछ कहा नहीं था। यदि ऐसा कह गई होतीं तो मैं तुम्हारा इन्तज़ार करता। जान पड़ता है कि पूटी-धूची को तो वह फूटी आंखों भी न देख सकेगी; क्योंकि कुछ भी हो, आखिर हैं तो सौत की ही लड़कियाँ। सौत ही नहीं, बल्कि डबल सौत, अर्थात् इस जन्म की भी सौत और उस जन्म की भी सौत।"

इसी समय पूटी ने दूर से पुकारा—"बाबू!"

गिरीश ने चौंककर उसकी ओर देखते हुए कहा—"क्या है बेटी!"

कन्या ने कहा—"गोकुल काका आये हैं। बैठके में बैठे हैं।"

गोकुल काका का नाम सुनते ही गिरीश को याद आया कि आज उसने सूद का हिसाब करने और कुछ रुपया भी देने का वादा किया था। अस्तु। प्रणय-चिन्ता छोड़कर विवश हो गिरीश बाबू लड़की के साथ बागीचे से चले आये।

रात में भोजन करने के बाद गिरीश पलँग पर आराम कर रहे थे कि सहसा उन्हें एक बात याद आई। दूसरी स्त्री जब अपने पिता के घर गई थी तो उसने वहाँ से बहुत से प्रेमपत्र लिखे थे। वे सब पत्र बड़ी हिफाजत से एक रेशमी कपड़े में लपेटे हुए गिरीश के ट्रङ्क में रखे थे। प्रभावती यदि इन पत्रों को देख लेगी तो उससे जान छुड़ाना मुश्किल हो जायगा। यह सोचकर उन्होंने पत्रों को फाड़ डालना ही निश्चय किया।

पलँग से झटपट उठकर गिरीशचन्द्र ने उस ट्रङ्क को खोला और पत्रों का पुलिन्दा ढूँढ़ निकाला। फिर पलँग पर आकर सब पत्र एक एक करके पढ़ने लगे। इसी में आधी रात बीत गई। रात अधिक हो जाने के कारण उन्होंने पत्रों को फिर यथाविधि लपेटकर रख दिया और निद्रादेवी की गोद में जाने की चेष्टा करने लगे।

परन्तु बड़ी देर तक निद्रा न आई। इधर-उधर करवटें बदलते रहे। सोचने लगे, इस संसार में चारों ओर माया ही

माया देख पड़ती है। मैं ही क्या, सभी लोग भूलकर माया में फँसे हुए हैं। दो बार जैसे फँसा वैसे ही एक बार और सही। मसल मशहूर है—

गये समय के सोच में प्रस्तुत काल न देय।
बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेय॥

लोगों का फैसला

"मुखोपाध्याय महाशय, श्रो मुखोपाध्याय महाशय! जरा सुने तो जाइये।"

सूर्योदय अभी हुआ ही है। गिरीशचन्द्र कंधे पर चद्दरा डाले तेज़ी से भट्टाचार्य्यपाड़े की ओर चले जा रहे थे। पास के एक कमरे से यह आवाज़ सुनते ही रुक गये।

कमरे के सामनेवाले बरामडे में एक चटाई पर माधव चक्रवर्ती बैठे हुक्का पी रहे हैं। उन्होंने फिर आवाज़ दी—"ज़रा सुने जाओ।"

कमरे में जाने के लिए सड़क पर से एक गली में होकर जाना होता है। उस गली के दोनों ओर बाग़ीचा है। उसमें तरह-तरह के फूल खिले हुए हैं, जिनसे सुगन्ध आ रही है। गिरीश मुखोपाध्याय धीरे-धीरे उस गली की ओर मुड़े। कमरे

दिनों तक तो फ़ायदा था; पर कल से लोग ने फिर जोर पकड़ लिया। आप कोई दवा जानते हैं ?"

"मैं तो दवा-दारू कुछ नहीं जानता।" यह कहकर गिरीश हुक्का पीने लगे। कुछ देर बाद हुक्का चक्रवर्ती को देते हुए बोले—"क्या बात कहनी है ?"

चक्रवर्ती ने इधर-उधर देखकर धीरे कहा—"मैंने एक बड़े अंधेर की बात सुनी है!"

"कौन सी बात सुनी है!"

"आपका फिर विवाह होगा!"

गिरीश बाबू यह बातें पहले ही जानते थे कि माधव यही बात पूछेगा; क्योंकि गाँव में स्थान-स्थान पर इसी बात की चर्चा होती थी और लोग गिरीश के इस काम को बड़ी नीची निगाह से देखते थे। बोले—"हाँ, होगा तो, क्या मेरी उम्र बीत गई है ?"

"उम्र बीत जाने की बात नहीं कहता। किन्तु अब आप क्यों व्यर्थ झंझट मोल लेते हैं—सुन्दर चांद के टुकड़े से आपके दो लड़के हैं, उन्हीं का विवाह करो। आनन्द से नाती-पोतों का मुँह देखकर सुखी-सुखी अपना समय बिताओ। अब फिर क्यों अपने गले में यह फन्दा डालते हो ?"

गिरीश गम्भीर स्वर से 'हूँ' कर चुप हो गये।

"आपको यह काम करने को कौन कहता है, सो तो मैं नहीं जानता; परन्तु यह निश्चय जानिये कि वह आपका

के पास पहुँचकर बनावटी क्रोध दिखाते हुए बोले—"सूली पर मैं क्यों जाऊँ, क्या किसी का खून किया है, या कहीं डाका डाला है? सवेरे सवेरे हल्ला मचाने लगे—"सूली पर जाओ, सूली पर जाओ।"

सुनते ही चक्रवर्त्तीजी अपनी हँसी रोक न सके। हँसकर बोले—"अले भाई, वैं यह लही कहता—सूली पर जाले को लही कहता। वैं तो कहता हूँ कि सुले जाओ। वुझ से अव ल (न) कहां बोला जाता है। सर्दी के वारे लाक तो एकदव वन्द हो गई है। प्रलाव, (प्रणाम) आइये, वैठिये। आज सवेले सवेले कहां तेज़ी से दौले चले जा लहे हो?"

गिरीश ने मुसकराकर कहा—"एक ज़रूरी काम से जा रहा हूँ, अभी बैठूंगा नहीं।"

"अले, इतली जल्दी काहे की है, जला वैठो तो, एक वात कहला है?"

गिरीश चक्रवर्त्तीजी के पास जाकर बैठ गये। बोले, "आपकी सर्दी तो फिर बढ़ गई।"

चक्रवर्त्ती ने कहा—"वला कष्ट है। वैं तो वहुत ही दुखी हूँ। कुछ दिल तो कव लहीं। अव कल से फिल वलह गई है। वैं एक गांव गया था। वहां एक आदवीं ले कहा कि ढाई तोले गाय के घी को गलवकल उसवें ढाई तोले विलच विलाकल खालो तो जुकाला यह लोग कव हो जायगा। उसी से इतले

दिनों तक तो फ़ायदा था; पर कल से लोग ने फिर जोर पकड़ लिया। आप कोई दवा जानते हैं?"

"मैं तो दवा-दारू कुछ नहीं जानता।" यह कहकर गिरीश हुक्का पीने लगे। कुछ देर बाद हुक्का चक्रवर्ती को देते हुए बोले—"क्या बात कहती है?"

चक्रवर्ती ने इधर-उधर देखकर धीरे कहा—"मैंने एक बड़े अंधेर की बात सुनी है!"

"कौन सी बात सुनी है!"

"आपका फिर विवाह होगा!"

गिरीश बाबू यह बातें पहले ही जानते थे कि माधव यही बात पूछेगा; क्योंकि गाँव में स्थान-स्थान पर इसी बात की चर्चा होती थी और लोग गिरीश के इस काम को बड़ी नीची निगाह से देखते थे। बोले—"हाँ, होगा तो, क्या मेरी उम्र बीत गई है?"

"उम्र बीत जाने की बात नहीं कहता। किन्तु अब आप क्यों व्यर्थ झंझट मोल लेते हैं—सुन्दर चांद के टुकड़े से आपके दो लड़के हैं, उन्हीं का विवाह करो। आनंद से नाती-पोतों का मुँह देखकर सुखी-सुखी अपना समय बिताओ। अब फिर क्यों अपने गले में यह फन्दा डालते हो?"

गिरीश गम्भीर स्वर से "हूँ" कर चुप हो गये।

"आपको यह काम करने को कौन कहता है, सो तो मैं नहीं जानता; परन्तु यह निश्चय जानिये कि वह आपका

चित्र लहीं है। ऐसा काव कलले से अवश्य ही आपके घल का शालित लष्ट हो जायगी। वुल्हापे वें ऐसी दुल्बुद्धि की वात ल कलला।"

गिरीश भीतर ही भीतर कुढ़ रहे थे। बुढ़ापे का शब्द सुनते ही उनसे न रहा गया। बोल उठे—"आप लोगों की न जाने यह कैसी बुरी आदत पड़ गई है कि बिना दूसरे की अनधिकार चर्चा किये खाना ही नहीं हजम होता। मैं अपना भला-बुरा भली भाँति समझता हूँ—अबोध बालक तो हूँ नहीं। अपने उपदेश को आप अपने पास रखिये। मुझे उससे कुछ प्रयोजन नहीं है।"

इतना कह गिरीश बाबू उठ खड़े हुए और स्लीपर फट फट करते बरंडे से नीचे उतर गये।

"दादा, गुस्सा हो गये—गुस्सा हो गये?" यह कहते हुए चक्रवर्त्ती भी नीचे उतर आये।

गिरीश जरा तेजी से चलने लगे थे; पर कुछ ही दूर जा पाये थे कि चक्रवर्त्ती ने उनका हाथ पकड़कर कहा—"दादा गुस्सा न हूजिये।"

गिरीश ने कहा,—"अरे भाई, गुस्सा नहीं हूँ। हाथ छोड़ दो। यह सब इस समय अच्छा नहीं लगता।"

लाचार हो चक्रवर्त्ती ने हाथ छोड़कर कहा—"इस बात को बिलकुल [illegible] न समझना। मेरा विश्वास है कि ईश्वर ने मुझे इसी काम के लिए [illegible] है। नहीं तो मैं अब तक

कभी का इस दुलिया से कूच कर गया होता। ओफ, सर्दी बहुत परेसान किये है।"

गिरीश ने झुँझलाकर कहा—"अच्छा, ऐसा ही सही, अब चलता हूँ।"

चक्रवर्ती ने कहा—"अच्छा जाइयेगा? प्रनाम।"

गिरीश ने बिना कुछ आशीर्वाद दिये ही अपना रास्ता लिया। उन्हें भट्टाचार्य्यजी के यहाँ जाकर यह निश्चय करना था कि ज्येष्ठ के आरम्भ ही में विवाह के उपयुक्त कोई शुभ दिन है या नहीं। इसी से वह जल्दी कर रहे थे।

गौरी-संवाद

भट्टाचार्य्यजी ने विवाह का दिन ज्येष्ठ बदी पञ्चमी स्थिर र दिया। कन्या के पिता जगदीश ने सुनकर कहा, "अच्छा ा है। उस समय हरिपद भी गर्मी की छुट्टियों में यहाँ रहेगा।" रिपद जगदीश का अकेला लड़का है। बेचारा प्राइवेट ट्यूशन रके कलकत्ते के किसी कालेज में बी० ए० में पढ़ता है।

प्रभावती को बचपन में गिरीशचन्द्र कई बार देख चुके हैं; र उन्हें अब उसे देखने की इच्छा बड़ी प्रबल हो रही है। धर वर्ष भर में उन्होंने उसे केवल उसी दिन देखा था, जिसका

वर्णन हो चुका है। उस रात को स्वप्न में भी उन्होंने उसे देखा था; पर पूर्वजन्म के चेहरे से इस जन्म के चेहरे में कुछ समानता है या नहीं, यह देखने के लिए उनकी लालसा उत्तरोत्तर बढ़ रही है। यहां तक कि परसों बातों ही बातों में उन्होंने यह इच्छा सतीशदत्त से प्रकट ही तो कर दी। सतीश ने कहा—"अजी ऐसी छोटी-छोटी बातों के लिए आप क्यों हताश होते हैं? यदि कभी-कभी आप मेरे घर आ जाया करें तो अनायास ही उसे देख सकते हैं, क्योंकि वह मेरे घर अकसर आया करती है।" किन्तु, गिरीश बाबू कभी वहां नहीं गये। उन्होंने सोचा कि यदि कोई इस गुप्त अभिप्राय को समझ गया तो क्या कहेगा।

आज नौ बजे नौकर के सिर पर सामान लदाये गिरीश बाबू बाज़ार से वापस आ रहे थे। एकाएक सतीशदत्त से भेंट हो गई। वे अपने मकान के सामने खड़े नरहरि मोदी से बातें कर रहे थे। गिरीश को देखते ही बोले—"दादा, प्रणाम। क्या बाजार से आ रहे हो? आओ, आओ, एक चिलम तमाखू तो पी लो।"

गिरीश ने कहा—"नहीं भाई, इस समय न बैठूंगा। गंगा-स्नान करने में देर हो जायगी। धूप तेज होती जाती है।"

"एक चिलम में देर ही कितनी होगी? आइये"— कह कर नरहरि को बिदा करके सतीश ने कमरा खोल दिया।

चिलम भरते हुए सतीश ने कहा, "कल और परसों, दोपहर से शाम तक, आपकी बाट जोहता रहा; पर आप आये ही नहीं।"

गिरीश ने लज्जित होकर कहा—"क्या करूं, अवकाश ही नहीं मिला।"

हुक्का पीते-पीते सतीश ने गिरीश के कान में कहा—"कल आई थी।"

गिरीश ने पूछा—"कौन?"

मुस्कराकर सतीश ने कहा—"आपकी प्रभावती। कल स्कूल से लौटने पर मैंने देखा कि प्रभा बैठी मां से बातें कर रही थी।"

"क्या बातें हुईं?"

"क्या कहूं, मुझे तो बड़ा आश्चर्य जान पड़ता है।" इतना कहते हुए सतीश ने गिरीश को चिलम देकर कहा, "पीजिए।"

तमाखू पीते-पीते गिरीशचन्द्र ने पूछा—"कुछ बताओ तो, क्या बात थी?"

"सुनिए" कहकर सतीश ने इधर-उधर देखते हुए कहना आरम्भ किया—"कल चार बजे स्कूल बंद होने पर जब मैं घर आया, कपड़े उतार ही रहा था कि भीतर किसी की बात करने की आवाज़ सुनाई दी। स्त्री से पूछने पर मालूम हुआ कि प्रभावती मां के पास जूड़ा कसाने आई है। मैंने उससे तो कुछ भी न कहा; पर मन ही मन सोचने लगा, अच्छा ही

हुआ, कल तो गिरीश बाबू आये नहीं, यदि आज आवें तो उनका मनोरथ पूरा हो जाय।"

सतीश की बात गिरीश बाबू बड़े ध्यान से सुन रहे थे। उनका ध्यान और किसी ओर न था। चिलम बुझती देख सतीश ने कहा—"लाइए, मुझे दीजिए।" दो-तीन फूंक पीकर वह फिर कहने लगे—"थोड़ी देर बाद मैंने सुना कि माँ ने उससे हँसी में कहा—"क्यों प्रभा, तू तो अब बूढ़े को सौंपी जायगी बूढ़ा तुझे पसन्द है न ?' इस पर प्रभा ने जो उत्तर दिया उसे सुनकर मैं तो अवाक् रह गया"। इतना कहकर सतीश फिर तमाखू पीने लगे।

गिरीश ने पूछा—"उसने क्या कहा ?"

सतीश ने गिरीश को चिलम देते हुए कहा—"आप तो पढ़े-लिखे हैं, ज़माना देखा है। सोचिए न, उसका क्या जवाब हो सकता है ?"

गिरीश ने कुछ देर सोचकर कहा—"मैं क्या कह सकता हूं ?"

सतीश ने कहा—"प्रभा ने जवाब में कहा, 'तुम्हारा वर भी तो बूढ़ा है। तुम्हें वह पसन्द है या नहीं ?' माँ ने कहा, 'मेरा वर क्या सदा बूढ़ा ही था ?'"

उसने उत्तर दिया, "क्या मेरे वे भी सदा बूढ़े थे ?"

सतीश कुछ देर तक गिरीश के मुख की ओर देखते रहे। उन्हें अत्यन्त आनन्दित देखकर सतीश ने कहा "दादा

बिलकुल कुमारसम्भव की सी घटना है। इसकी वही बात है—

> इति प्रतीच्छामनुशासती सुतां।
> शशाकमेना न नियन्तुमुद्यमात् ॥
> क ईप्सितार्थ स्थिर निश्चयं मनः।
> पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत ॥

कविता में जो भाव पढ़ा वही आज प्रत्यक्ष देखने में आया। प्रभा की बात का तात्पर्य्य समझा आपने ?"

"इसका तात्पर्य्य और क्या"—कहकर गिरीश सतीश की ओर उत्सुकता से देखने लगे।

सतीश ने गम्भीर होकर कहा—"यह समझना आसान नहीं है। मैं भी बहुत देर माथापच्ची करने के बाद समझ सका हूं! और यह भी, जब मैं सारा भीतरी हाल जानता था। यदि आप उस दिन के स्वप्न की बात न बतलाते तो मैं क्या, मेरे फरिश्ते भी उस मतलब को समझ न सकते।"

गिरीश बाबू बड़े कौतूहल से सतीश की ओर देखने लगे।

सतीश ने कहा—"मेरी मां के साथ अपनी समानता उसने देखलाई, इसका कारण आपने समझा? मेरी मां की उम्र लगभग पचास वर्ष की होगी और पिता की उम्र साठ वर्ष। फिर भी उसने उनकी उपमा क्यों दी? उपमा और उपमेय दो पदार्थ होते हैं। दोनों में जब तक समानता न हो तब तक उपमा नहीं दी जा सकती। यह स्कूल के मामूली विद्यार्थी भी

जानते हैं। दण्डी ने कहा है—"यथा कथंचित् सादृश्यं यत्रो
द्भूत प्रतीयते उपमा नाम सा।"

गिरीश को चुप देख सतीश ने फिर कहना आरम्भ किया-
"प्रभा की इस बात का अर्थ यह है कि जिस भांति तुम अप
बूढ़े पति को भक्ति तथा प्रेम की दृष्टि से देखती हो वैसे ह
मेरे बूढ़े स्वामी भी श्रद्धा के पात्र हैं। जिस समय तुम्हारे पा
युवा थे उस समय तुम जैसी श्रद्धा तथा स्नेह करती थी वै
ही जब यह युवा थे, मैं भी करती थी—अर्थात् जब
युवा थे, तब भी मेरे स्वामी थे और अब वृद्ध होने पर भी
स्वामी हैं। ऐसी दशा में भला क्या परिवर्त्तन हो सकता है
(कुछ ठहरकर) कुमारसम्भव में गौरी ने भी ऐसा ही उ
दिया था। प्रभा की बात का अर्थ इसके अतिरिक्त और हो
क्या सकता है ? बताइए न।"

तमाखू पीते-पीते गिरीश इस मुँहचुपड़ी बात
आलोचना मन ही मन करने लगे। कुछ देर बाद बोले—"
इसके सिवा और अर्थ हो ही क्या सकता है ?"

यह सुनकर सतीश को अपने पाण्डित्य पर स्वाभाविक
गर्व हुआ। उससे उत्साहित होते हुए उन्होंने फिर कहना
किया—"केवल इतना ही नहीं, जब मां ने हँसकर कहा
मैंने तेरे मन की थाह लेने को यह बात कही थी। गिरीश
थोड़े ही हैं। ईश्वर की कृपा हो तो उनसे तेरे ही चार-छै
हो सकते हैं—इस पर प्रभा ने क्या जवाब दिया, जानते हो

गिरीश ने कहा—"क्या ?"

"उसने कहा कि मुझे अब लड़के-लड़कियां न चाहिएँ। तुम आशीर्वाद दो कि नरेन्द्र सुरेन्द्र अच्छे रहें। दो अच्छी लड़कियां ढूंढ़कर शीघ्र ही उनका विवाह करूंगी"

यह सुनते ही गिरीश का हृदय धड़कने लगा। उन्हें स्वप्न की बात याद आगई। पहिली स्त्री ने नरेन्द्र-सुरेन्द्र की स्त्री से झगड़ने की इच्छा स्वप्न में प्रकट की थी।

सतीश ने कहा—"ज़रा देखिए तो। बिना किसी से पूछे अथवा सलाह किये यह कहना कि नरेन्द्र-सुरेन्द्र का विवाह करूंगी, सिवा माता के और कौन कह सकता है ? उस जन्म की मां, बिना हुए ऐसी बात वह कैसे कह सकती है ?"

गिरीश मन ही मन सोचने लगे, ठीक ही तो है। नरेन्द्र-सुरेन्द्र का नाम लिया; मगर पुटी-बूची की चर्चा तक न की। इससे साफ ज़ाहिर है कि सौत के बच्चों की उसे क्या ममता ? वह क्यों फ़िक्र करती ? अस्तु; उन्होंने निश्चय कर लिया कि घर जाकर दूसरी स्त्री के लिखे हुए पत्र अवश्य फाड़ डालेंगे।

इसके बाद दोनों में बहुत देर तक विवाह-सम्बन्धी अन्यान्य बातें होती रहीं। गिरीश ने कहा—"विवाह तो मैं करूंगा; पर इस बात से न जाने क्यों गांववालों के पेट में दर्द सा हो रहा है।"

सतीश ने कहा—"कुछ पूछिए न। इस गांव में कोई किसी

का भला देख ही नहीं सकता। किसी की भलाई सुनते ही लोगों के पेट में खलबली मच जाती है। इस गांव में शायद ही ऐसा कोई मनुष्य हो जिसे आपने आवश्यकता पड़ने पर सहायता न दी हो। किसीको रुपया उधार देकर, किसीको अन्य प्रकार से, किन्तु उसके बदले में यह बर्त्ताव देख लीजिए। कल रात मैंने तो लोगों को खूब ही फटकारा।"

गिरीश ने पूछा—"कैसे ?"

"कल शाम को आपकी प्रतीक्षा करता रहा; पर जब आप न आये और प्रभा भी अपने घर चली गई, तब मैं पाण्डेटोला गया। पण्डितजी के यहां देखा कि बहुत लोग बैठे हैं। मैं भी जाकर बैठ गया। इधर-उधर की बातें होने के बाद आपके विवाह की चर्चा होने लगी। यादवचन्द्र ने मज़ाक करते हुए कहा, "बुढ़ापे में गिरीश अब फिर युवक बनने की तैयारी कर रहे हैं—फिर विवाह करने की सूझी है, यह कहकर एक श्लोक पढ़ा।"

गिरीश ने पूछा—"कौन सा श्लोक?"

सतीश ने पढ़ना शुरू किया—

"पाणौ ग्रहीतापि पुरस्कृतापि स्नेहेन नित्यं परिवर्द्धितापि।
परोपकाराय भवेदवश्यं वृद्धस्य भार्य्या करदीपकेव ॥"

"इसका अर्थ है......।"

गिरीश ने रोककर कहा—"चूल्हे में गया अर्थ। यह बताओ, तुमने क्या कहा ?"

"मैंने कहा, 'आपकी बात तो ठीक है; पर गिरीश बूढ़े कैसे हुए !"

यादव ने कहा—'क्यों, पचास वर्ष की आयु है, फिर बूढ़े होने में कौन सी कसर है' ! मैंने पूछा—'वृद्ध किसे कहते हैं, जानते हो या यों ही अपनी टांग बीच में अड़ा रहे हो ? दो श्लोक याद कर लिये और चल दिये वहां से । सुनो, वृद्ध किसे कहते हैं—

आषोडशात् भवेद्बालस्तरुणस्तत उच्यते ।

वृद्धःस्यात् सप्ततेरूर्ध्वं वर्षीयान् नवतेः परम् ॥

"अर्थात् सत्तर वर्ष की अवस्था जिसकी होती है उसे वृद्ध और इससे कम आयुवाले को तरुण कहते हैं । यह स्मृति का वाक्य है । जानते हो ?"

गिरीश ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"खूब मुँह-तोड़ जवाब दिया । इसे सुनकर फिर उसने क्या कहा ?"

गर्व से सतीश ने फिर कहा—"इसका जवाब वह दे ही क्या सकता था ? अपना सा मुँह लेकर रह गया । इसके बाद आपके वह, जिनका नाम चक्रवर्ती—या कुछ ऐसा ही तो नाम है—जिन्हें बारहों महीने सर्दी बनी रहती है.. ......।"

गिरीश ने कहा—"हां, हां, माधव । वह भी वहां था क्या ?"

"हां, वह बोला—'क्या बिना सत्तर वर्ष के बूढ़ा ही नहीं होता ! पचास के बाद हमारे शास्त्रों में संन्यास लेकर वन जाने का आदेश है; किन्तु वन जाने के बदले गिरीश तो विवाह

करने पर उतारू हैं ! यह कितने आश्चर्य की बात है !' मैंने सोचा अच्छा, अब इन लोगों से एक मज़ाक करूं । मैंने कहा, 'सज्जनो, मैं तो कायस्थ हूं, शास्त्र-वास्त्र कुछ जानता नहीं। आप लोग बड़े-बड़े विद्वान् हैं । यह बात जानना चाहता हूं कि क्या शास्त्रों में पचास वर्ष के बाद संन्यास लेकर वन जाने का आदेश है ?' यह सुनते ही पण्डितजी ने कहा, 'हां चक्रवर्ती ठीक तो कहता है' । मैंने कहा—'तब तो गिरीश बाबू भी ठीक यही काम कर रहे हैं । मैं अधिक तो कुछ जानता नहीं, थोड़ी सी संस्कृत पढ़ी है। उसी के बल और आप लोगों की कृपा से स्कूल में तीस रुपये मासिक वेतन पर सेकेण्ड पण्डित हूं । आपही लोग विचार कीजिए कि गिरीश बाबू वन जा रहे हैं या नहीं ! श्लोक यह है—

'पुष्पबाणभयतो मनो मृगः संविवेश नवयौवने वने ।
तत्र दृष्टिविशिखेन हन्यते कातरे तव कृपा न जायते ॥

यह सुनते ही पण्डितजी ठट्ठा मारकर हँस पड़े। गिरीश ने पूछा—"इस श्लोक का अर्थ क्या है ?"

सतीश ने कहा—"नायक नायिका से कहता है कि कन्दर्प-बाणों के भय से मेरे मनरूपी मृग ने तुम्हारे नवयौवनरूपी वन में प्रवेश करके आश्रय लिया; किन्तु तुमने निष्ठुरता से उसे अपने नेत्ररूपी बाणों से घायल कर डाला !"

गिरीश ने कहा—"वाह-वाह ! श्लोक बड़ा बढ़िया है। मुझे लिखा दो ।"

जान पड़ता है, उन्होंने सोचा कि समय पर यह श्लोक बड़ा काम देगा। सतीश ने काग़ज़-पेन्सिल लेकर श्लोक लिखा दिया। गिरीश उसे हँस-हँस कर पढ़ने लगे।

सतीश ने बाहर की ओर देखकर कहा—"अरे बड़ी धूप चढ़ आई। दस बज गया होगा।"

गिरीश ने कहा—"बजे होंगे, तुम्हें करना ही क्या है। आज तो तुम्हारा स्कूल बंद है। गुडफ्राइडे की छुट्टी है न?"

"जी हां; किन्तु ज़रा पोस्टआफिस तक जाना पड़ेगा। एक बहुत ज़रूरी चिट्ठी आनेवाली है। उसके लिए चित्त उद्विग्न हो रहा है।"

"अच्छा तब तो मुझे आज्ञा दो"—यह कहकर गिरीश चल दिये।

उनको घर पहुँचकर कपड़े उतारने और गंगा-स्नान को जाने में लगभग एक घंटा लग गया। चैत का महीना है। दोपहर का समय है। फिर भी गिरीश को किसी तरह का कष्ट नहीं हो रहा है। क्योंकि वह तो रास्ते भर सतीश की मीठी बातों की आलोचना करते रहे।

तीसरे पहर सतीश गिरीश के घर पहुँचा। उदास मुहँ और आखों में आँसू भरे, रूँधी हुई आवाज़ से बोला—"दादा, मुझे आज बड़ी विपत्ति का सामना है। आज की डाक से पत्र मिला है, जिससे . . कि ससुराल की

बहुत सी जायदाद, जिसका एक मात्र मैं ही मालिक था, एक आदमी ने नीलाम पर चढ़वा दी है। उसे पांच सौ रुपये देने पर सब जायदाद छूट सकती है। मालियत बहुत ज़्यादा की है। मेरे पास इस समय एक पैसा नहीं। तमाम दोपहर इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा; पर सब जगह से टका सा जवाब मिला। अब इस समय यदि आप रक्षा करें.......।"

गिरीश ने पांच सौ रुपये भीतर से लाकर सतीश के हाथ में दे दिये।

सतीश ने कहा—"मैं एक आने का टिकट लेता आया हूं। एक काग़ज़ दीजिए तो इन्दुलतलब रुक्का लिख दूं। सूद क्या रहेगा ?"

गिरीश ने बीच ही में रोककर कहा—"अरे, बड़े पागल हो। तुमसे इन्दुलतलब रुक्का लिखाऊंगा ! रुपये ले जाओ। जब तुम्हारे पास हों, दे देना।"

गिरीश ने जिन्दगी भर में इससे पहले किसी के साथ इतनी उदारता नहीं दिखलाई।

सतीश ने प्रसन्न होकर कहा—"मैं कायस्थ हूं, आप ब्राह्मण हैं। उस पर भी उम्र में आप बड़े हैं। और क्या कहूं—भगवान, करे, हर-गौरी का पुनर्मिलन शीघ्र ही हो।" इतना कह वह रुपये की थैली लेकर और गिरीश के पैरों को मिट्टी अपने सिर में लगाकर चलता बना।

रसगुल्ला और खीरमोहन

इधर तो गौरी, तथा हर, के सम्बन्ध में जो बातें कुमार-सम्भव में नहीं हैं, न शिवपुराण में, वह सभी गढ़ ली जाती थीं और उधर प्रभावती अपने प्रवीण हस्ताक्षरी का दुष्ट, दुराचारी, पापी आदि विशेषणों से स्मरण किया करती थी। यद्यपि वह इन विशेषणों का प्रयोग केवल अपने बराबरवाली सखियों के सामने ही करती थी; पर धीरे-धीरे उसके माता-पिता भी जान गये कि इस विवाह से प्रभा दुखी होगी। उसका खाना-पीना कम हो गया। सुन्दर कमल-सा मुख कुम्हलाने लगा और आँखें गढ़े म जाने लगीं। परन्तु कोई उपाय छुटकारे का न था। बेचारी प्रभावती की मां चुपचाप अकेले में बैठकर रोया करती थी। इसके सिवा वह कर ही क्या सकती थी? कहना व्यर्थ है कि गिरीश से कही हुई गौरी-सम्वादवाली बात केवल सतीश की कपोल-कल्पित रचना थी।

बाबूपाड़े में जगदीश का मकान एकमंज़िला बना हुआ है। उसकी दशा इस समय बहुत ही ख़राब है। दीवारों का—बाहर-भीतर सभी जगह का—चूना गिर जाने से दरारें हो गई हैं। भीतर कमरे में बैठनेवालों को सहसा यह मालूम होने

लगता है मानों कोई दांत बाये काटने के लिए खड़ा है। दरवाजों और जँगलों के न तो किवाड़े ठीक हैं और न उनकी जंजीरें। आंगन के तीन तरफ जो दालानें थी वह भी गिर गई हैं। सारांश, मकान अत्यंत जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है।

जगदीश की उम्र पचास वर्ष के लगभग होगी। पहिले वे सुन्दरवन के किसी जमींदार के यहां दस रुपये मासिक वेतन पर नौकर थे। ऊपर की भी आमदनी थी। प्रति वर्ष दुर्गा-पूजा की छुट्टियों में वह घर आया करते थे। एक महीना रहकर फिर लौट जाते थे। घर पर बीस बीघे ज़मीन की खेती होती थी। इतनी आमदनी से घर का ख़र्च मज़े में चलता था। पर गत पांच वर्षों से वह बेरोज़गार हैं—उनकी नौकरी छूट गई। घर ही में रहते हैं। जीवन-निर्वाह के लिए सिर्फ खेती ही रह गई। जिस साल पूरी फ़सल हो जाती है उस साल तो जैसे-तैसे गृहस्थी का काम चल जाता है और ज़मींदार का लगान अदा हो जाता है; परन्तु फसल में ज़रा भी गड़बड़ी होने से मुसीबत का सामना करना पड़ता है। बिना कर्ज़ लिये काम नहीं चलता। यही कारण है जो उनका मकान और बीस बीघा ज़मीन आज गिरीश बाबू के यहां रेहन है। प्रभा का विवाह उनके साथ हो जाने पर यह सब चीज़ें गिरीश ने छोड़ देने का वादा किया है।

गुड़फ्राइडे की छुट्टी में आज जगदीश का लड़का हरिपद घर आया है। वह प्रभा से उम्र में पांच-छै वर्ष बड़ा है। रेखें

भीन रही हैं। बड़ा ही सच्चरित्र और शांत-चित्त है। ग्रामीण स्कूल से प्रवेशिका परीक्षा पास होने पर इसे दस रुपये मासिक की छात्रवृत्ति सरकार की ओर से मिली। अतएव यह कलकत्ते पढ़ने चला गया। गत वर्ष एफ० ए० पास हो गया; पर उसे छात्रवृत्ति नहीं मिली। सब लोगों ने—यहां तक कि पिता ने भी—पढ़ना छोड़कर नौकरी करने को बहुतेरा समझाया; परन्तु उसने किसी की न सुनी। खर्च के लिये प्राइवेट ट्यूशन करके इस साल बी० ए० में पढ़ता है।

इस समय जगदीश के केवल यही एक लड़का और प्रभावती एक कन्या है। शेष जो हुए वे सब बचपन ही में काल-कवलित हो गये। हरिपद अपनी बहिन को बहुत ही स्नेह से देखता है। वह गर्मी अथवा दशहरे की छुट्टियों में घर आने पर बड़े यत्न से प्रभा को पढ़ना-लिखना सिखलाता है और उसके लिए कलकत्ते से आते समय एक-दो उत्तमोत्तम पुस्तकें और थोड़े दाम की अन्य वस्तुएं लेता आता है। प्रभा भी अपने बड़े भाई को देखकर 'दादा' सम्बोधन करते गद्गद् हो जाती है।

हरिपद ने आते ही बहन का भाव बदला हुआ पाया। उसकी वह सुन्दर हँसी, चेहरे की वह प्रफुल्लता नहीं दिखाई पड़ती। शरीर भी दुर्बल हो गया। उसने पूछा - "प्रभा, तुझे क्या हो गया है? कैसी ... होती जाती है? कुछ बीमार है

'हां, सब ठीक ही समझो। ज्येष्ठ बदी पञ्चमी को विवाह होना निश्चय हुआ है।'

"अभी तिलक नहीं हुआ ?"

"नहीं, अभी नहीं।"

हरिपद की आंखों में आंसू भर आये। रुँधे हुए गले से, भर्राई हुई आवाज़ से, उसने कहा, "मां, पापकर्म कदापि न करो। जान-बूझकर प्रभा को गढ़े में न डालो। वह बालिका है। पचास वर्ष के बूढ़े के हाथों में सौंपने से भला उसे क्या सुख मिलेगा ?"

मां बोली, "क्यों बेटा, सुख क्यों न होगा ? इतने धन-दौलत और विपुल सम्पत्ति की वह अधिकारिणी होगी, फिर भी उसे सुख न होगा ?"

हरिपद ने कहा, "मां, तुम बुद्धिमती होकर ऐसी बातें करती हो ? क्या धन ही एक मात्र स्त्रियों के सुख का कारण है ?"

मां ने कहा, "बेटा, मैं सब समझती हूं। पर क्या करूं, कुछ बस नहीं चलता। पहले पहल जब गिरीश ने विवाह का प्रस्ताव किया तब हम लोगों ने उसे हँसी में उड़ा दिया। किन्तु जब उन्होंने हमारा घर, ज़मीन इत्यादि रेहन की चीज़ें छोड़ देने कहा, विवाह में दोनों ओर का ख़र्च करना खुद ही निश्चय किया और प्रभा को दो हज़ार का गहना देने कहा, तब [illegible] को राज़ी होना पड़ा।"

हरिपद ने कहा, "मां, केवल रुपये के लिए क्या तुम अपनी बेटी को इस तरह कुएं में ढकेल दोगी ? तुम्हारे चार नहीं, छै नहीं, केवल यही एक लड़की है, फिर भी तुम ऐसा काम करने पर तैयार हो ? बड़े आश्चर्य की बात है ! मां, इस असत् संकल्प को छोड़ दो ।"

मां ने उत्तर दिया—"यदि मेरे बस की बात होती तो क्या मैं ऐसा होने देती ? तुम्हीं देखो, प्रभा चौदह वर्ष की हो गई; पर अभी तक कोई अच्छा वर नहीं मिला। कोई दो हज़ार मांगता है तो कोई पांच हज़ार; और यहां पांच पैसे का भी सुभीता नहीं। ऐसी दशा में मैं कर ही क्या सकती हूं ?"

हरिपद ने कहा—"मां, यदि मैं दूसरा वर ठीक कर दूं तब ?"

"अभी तक क्यों नहीं ठीक किया ? आज दो वर्ष से तो हैरान होना पड़ रहा है।"

"लड़का अत्यन्त ग़रीब है; किन्तु पढ़ा-लिखा सच्चरित्र युवक है। क्या इस सम्बन्ध को छोड़कर उसे स्वीकार कर लोगी ?"

"हां, करूंगी नहीं क्या ? परन्तु पहले सब ठीक कर लो तब इसे छोड़ूंगी। यदि वह न मिला तो मैं दीन-दुनियां कहीं की न हूंगी।"

हरिपद ने कहा—"विवाह की तिथि ज्येष्ठ वदी पञ्चमी ठीक । यदि मैं वैशाख तक वर ठीक कर दूं तो वह सम्बन्ध । ?"

"हां, हां, क्यों नहीं ? अभी बिगड़ा ही क्या है। तिलक भी तो नहीं हुआ। परन्तु ख़र्च !"

"उसे कुछ भी न देना पड़ेगा।"

"किन्तु अपना ख़र्च ता है ?"

"हम लोग दावत न देंगे। पुरोहित की दक्षिणा और नाई-बारी इत्यादि के इनाम-इकराम में अधिक से अधिक बीस रुपये लगेंगे ?"

"अच्छा, देखो, वे क्या कहते हैं।" कहकर माता वहां से चली गई।

हरिपद ने पत्रा उठाकर देखा कि वैशाख में बहुत सी लग्नें हैं। दशमी की अन्तिम लग्न है। एक कागज़ में उसने सब लग्नें लिख लीं।

तीसरे पहर एक दासी कुछ सामान सिर पर लादकर बन्द्योपाध्याय के घर आई। मालकिन से उसने कहा—"गिरीश बाबू की बुआजी ने लड़की के भाई का आना सुनकर यह सामान और कुछ रुपया उपहार-स्वरूप भेजा है। लीजिये।" लोगों ने देखा कि एक हांडी में रसगुल्ला, एक में खीरमोहन, एक जोड़ा धोती, एक साड़ी, दो बक्स साबुन, दो शीशी सुगन्धित तेल और इत्र इत्यादि वस्तुएं थीं। इन सब को देख हरिपद ने क्रोधित होकर कहा—"मां, यह सब चीज़ें वापस कर दो।"

मां चुपचाप खड़ी रही।

गिरीश ने लड़कों को प्यार किया। और मिठाई की पोटली भीतर भेजकर बाकी सब सामान को बैठक में रखवाया। नौकर से पूछने पर मालूम हुआ कि हेम बाबू अभी दफ़्तर से आये नहीं। उन्हें आने में कुछ देर है। हाथ-मुँह धोकर गिरीश बाबू विश्राम करने लगे और बालक-बालिकायें उन्हें घेरकर बैठ गईं।

गिरीश अपने लिए कुछ सामान ख़रीदने तथा स्त्री के लिए गहना बनवाने के निमित्त आज यहाँ पधारे हैं। यद्यपि पहली और दूसरी—दोनों ही स्त्रियों के बहुत से गहने घर में मौजूद हैं; किन्तु वे सब पुराने हो गये। प्रभावती को नई चाल के गहनों से सजाने की उनकी इच्छा है। गाँव का सुनार यद्यपि अच्छा काम बना लेता है; पर कलकत्ते की सी पालिस नहीं कर पाता। इन्हीं सब बातों से बेचारे गिरीश को आज यहाँ आना पड़ा।

भीतर जाते ही गिरीश ने भाभी को प्रणाम किया। कुशल-प्रश्न होने के बाद वह जलपान करने बैठे। गाँव में वह बिना संध्या-वंदन किये कभी जल ग्रहण नहीं करते थे; पर आज न जाने क्यों उन्होंने उस नियम को तोड़ डाला। जान पड़ता है, गिरीश इन कामों को अब पुरानी सभ्यता के अन्तर्गत समझने लगे हैं। अस्तु। थोड़ा सा मीठा खाकर हाथ मुँह धोने के बाद वह बहूरानी के साथ बातें करने लगे।

गाँव-गली का हाल लेकर बहूरानी ने पूछा—"विवाह का दिन स्थिर हो गया?"

हरिपद ने पूछा—"क्या सोचती हो ?"

"सोचती हूं, बेटा, बड़ी दूर की बात। अभी से ऐसी बात करना उचित नहीं। तू यदि दूसरा 'वर' ठीक कर देगा तो मैं कहती तो हूं कि वैशाख में प्रभा का विवाह उसके साथ कर दूंगी।"

क्रोध के मारे हरिपद का शरीर कांपने लगा। वह वहां अधिक ठहर न सका। शाम को जलपान की चीज़ों में वही रसगुल्ला इत्यादि देख उसने उठाकर फेंक दिया। छुट्टी के तीन दिन बाकी रहने पर भी वह दूसरे दिन कलकत्ते चला गया।

कलकत्ते में

वैशाख के प्रथम सप्ताह में एक दिन दोपहर के बाद हौड़ा स्टेशन से किराये की गाड़ी करके गिरीश बाबू चूनापुकुरलेन पहुँचे। यहां इनके बचपन के साथी, रेल के आडिट-दफ़्तर के बड़े बाबू, हेमचन्द्र घोपाल रहते हैं। घोपाल बाबू भी त्रिवेणी के रहनेवाले हैं। गाड़ी दरवाज़े पर ठहरते ही ज्योंही गिरीश बाबू उतरे कि हेम बाबू के छोटे-छोटे बच्चों ने दौड़कर कहना शुरू किया—"गिरीश काका आये—गिरीश काका आये।"

गिरीश ने लड़कों को प्यार किया। और मिठाई की पोटली भीतर भेजकर बाकी सब सामान को बैठक में रखवाया। नौकर से पूछने पर मालूम हुआ कि हेम बाबू अभी दफ़र से आये नहीं। उन्हें आने में कुछ देर है। हाथ-मुँह धोकर गिरीश बाबू विश्राम करने लगे और बालक-बालिकायें उन्हें घेरकर बैठ गईं।

गिरीश अपने लिए कुछ सामान खरीदने तथा स्त्री के लिए गहना बनवाने के निमित्त आज यहाँ पधारे हैं। यद्यपि पहली और दूसरी—दोनों ही स्त्रियों के बहुत से गहने घर में मौजूद हैं; किन्तु वे सब पुराने हो गये। प्रभावती को नई चाल के गहनों से सजाने की उनकी इच्छा है। गाँव का सुनार यद्यपि अच्छा काम बना लेता है; पर कलकत्ते की सी पालिस नहीं कर पाता। इन्हीं सब बातों से बेचारे गिरीश को आज यहाँ आना पड़ा।

भीतर जाते ही गिरीश ने भाभी को प्रणाम किया। कुशल-प्रश्न होने के बाद वह जलपान करने बैठे। गाँव में वह बिना संध्या-वंदन किये कभी जल ग्रहण नहीं करते थे; पर आज न जाने क्यों उन्होंने उस नियम को तोड़ डाला। जान पड़ता है, गिरीश इन कामों को अब पुरानी सभ्यता के अन्तर्गत समझने लगे हैं। अस्तु। थोड़ा सा मीठा खाकर हाथ-मुँह धोने के बाद वह बहूरानी के साथ बातें करने लगे।

गाँव-गली का हाल लेकर बहूरानी ने पूछा—"विवाह का दिन स्थिर हो गया?"

गिरीश ने सिर नीचा करते हुए कहा, "हां, ज्येष्ठ बदी पंचमी निश्चित हुई है। आपने किससे सुना ?"

बहूरानी ने कहा, "यों ही लोगों में चर्चा होते सुना।"

"नरेन्द्र-सुरेन्द्र आये थे ?"

"हां, वह तो अकसर ही आते हैं। पिछले बुधवार— नहीं, नहीं–मंगलवार को सुरेन्द्र आया था।"

"उसीने कहा होगा।"

बहूरानी ने इसका उत्तर न देकर बात फेरते हुए कहा— "भाई, तुम्हारे दोनों बेटे बड़े अच्छे हैं। उनकी पितृभक्ति सराहनीय है। ईश्वर उन्हें चिरंजीव रखे।"

गिरीश जान गये कि अवश्य ही लड़कों ने यह खबर दी है। वह यह भी समझ गये कि यह विवाह उन दोनों को पसंद नहीं है। इसी से "गुड-फ्राइडे" की छुट्टी में घर न जाकर डाइमण्ड-हारबर देखने चले गये। कुछ देर चुप रहकर गिरीश ने कहा—"क्या करूं भाभी, इस उम्र में विवाह करने की मेरी इच्छा तो नहीं है; परंतु बुआजी किसी तरह नहीं मानतीं।"

बहूरानी ने मुसकराकर कहा—"ठीक तो है। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है ? तुम से भी अधिक उम्रवाले कितने ही लोग विवाह करते हैं। यदि अभी मैं ही मर जाऊं तो तुम्हारे दादा ही क्या—"

गिरीश ने रोककर कहा—"ऐसी बात ज़बान पर न लाइए।

मैं तो बुआजी की बात की भी परवा न करता; पर करूं क्या, घर बिलकुल ही सूना है।"

धीरे-धीरे गहनों की चर्चा छिड़ी। बहूरानी ने बड़े उत्साह से इस विषय में योग दिया। कौन-कौन गहने का आज कल रिवाज है, किस-किसकी चाल जाती रही, कितनी भारी कौन-कौन सी चीज़ बनना चाहिए, इत्यादि सभी बातें उन्हों ने बड़े मनोयोग के साथ बतलाईं। गिरीश ने कहा—"गिन्नी तो मैं साथ ही लेता आया हूं।" बहूरानी बोलीं—"अच्छा तो कल सबेरे ही हारालाल को बुला भेजूंगी। हमारे यहां का जितना काम होता है, सब वही बनाता है। काम-काज में उसी ने सब गहने बनाये हैं। बनवाई तो वह ज़रूर कुछ ज्यादा लेता है; परन्तु आदमी बड़ा ईमान्दार है। जो कुछ काम करता है, बड़ा ही सुन्दर होता है। देखते ही तबीअत खुश हो जाती है।"

आसन से उठकर गिरीश बाबू इस समय कुर्सी पर बैठे हुए पान खा रहे थे। दासी ने चिलम भरकर सामने रख दी। तमाखू पीते हुए गिरीश बाबू बोले—"भाभी, विवाह में आपको तो ज़रूर चलना पड़ेगा। बिना चले नहीं बनेगा।"

बहूरानी ने कहा—"जाने की तो मेरी बड़ी इच्छा है; किन्तु मेरे सामने एक बड़ी कठिनाई है। मँझली लड़की शीघ्र ही आनेवाली है। उसके बच्चा होनेवाला है। उसे अकेली छोड़-कर कैसे जा सकती हूं? ईश्वर करे, सब काम राज़ी-खुशी से हो जायें। तुम मुझे यहीं आकर यह दिखा जाना।"

"अच्छा, भाभी, आपने प्रभा को देखा तो है?"—इस के उठते ही प्रभा के रूप-गुण की आलोचना होने लगी। घंटा बीत गया। धीरे-धीरे अंधकार हो गया। दीपक भी गये। गिरीश बाबू ने बैठके में आकर बकस से अफीम डिबिया निकाली और उसमें से एक गोली खाई। कुछ बाद हेम बाबू दफ्तर से आ गये। बाल्य-बन्धु गिरीश को ही बड़े आनन्द से उनकी अभ्यर्थना कर कपड़ा उतार लिए वह भीतर चले गये।

पुत्र से बात-चीत

"गिरीश, चाय पिओगे?"

"नहीं, हेमदादा, चाय पीने की तो मेरी आदत नहीं है

"बड़े विलक्षण मनुष्य जान पड़ते हो। चाय तो आ सभी पीते हैं। केवल पुरानी चाल के बूढ़ों को छोड़कर नहीं पीता? रह गई आदत की बात, वह तो अपने हाथ आदत डालने ही से पड़ती है। गोविन्द, जा! दो ले आ।"

दूसरे दिन सवेरे उठने पर दोनों मित्रों में जब ऐसी

हो चुकीं, गोविन्द दो प्याले चाय ले आया। आज बहुत दिनों के बाद गिरीश ने बिना स्नान-पूजन किये चाय ग्रहण किया।

गत रात्रि को दोनों में विवाह-सम्बन्धी बहुत सी बातें हो चुकी हैं। हेम बाबू ने गिरीश के विवाह करने में कोई दोष तो नहीं बतलाया; किन्तु उसका समर्थन करते हुए एक नई युक्ति ढूंढ़ निकाली। उन्होंने कहा—"नरेन्द्र-सुरेन्द्र बड़े हुए हैं। आज न सही, चार दिन बाद उनकी बहुएँ घर आयेंगी। यह सब तो ठीक है। किन्तु क्या वह सदैव घर पर बने रहेंगे। बाहर जाकर कोई नौकरी करेगा, कोई विकालत करेगा। अपनी-अपनी स्त्री अपने साथ ले जायँगे। तब तुम्हारी देख-रेख कौन करेगा? रहीं बुआजी, उनका कौन भरोसा, आज मरीं कल दूसरा दिन! ऐसी दशा में तुम्हारी क्या हालत होगी? बुढ़ापे में चूल्हा फूंकते-फूंकते नाक में दम आ जायगी। बुढ़ापे में ज़रा-ज़रा सी बात में रोग घेरता है। यदि ऐसा ही हुआ तो कोई पानी देनेवाला भी नहीं देख पड़ता। तुम किसी को बात न सुनो। विवाह अवश्य कर डालो।"

मित्र के ऐसे अनुरोध को सुनते हुए गिरीश ने बिना स्नान-पूजन किये यदि चाय भी पी ली, तो कौन बड़ा पाप किया?

चाय पीकर गिरीश बाबू हुक्का पीते हुए न जाने क्या सोचने लगे। उनका मुँह कुछ उदास पड़ गया। थोड़ी देर बाद नौकर को बुलाकर कहा—"गोविन्द, क्या बहूरानी ने

हीरालाल सुनार को बुलाने के लिए किसी को भेजा ?" नौकर ने कहा—"नहीं, अभी तो नहीं गया, चाय का बर्तन धोकर मैं बाज़ार जाऊंगा, तभी कहता आऊंगा।" गिरीश ने कहा—"तब फिर आज न जाना, आज ज़रूरत नहीं, कल देखा जयगा।" "बहुत अच्छा" कहकर गोविन्द चला गया।

नौकर के जाने के थोड़ी देर बाद गिरीश बाबू के दोनों पुत्रों ने आकर उन्हें प्रणाम किया। यह लोग पटलडाङ्गा के एक मेस में रहते हैं। बड़ा लड़का नरेन्द्र सिटी-कालेज में बी० ए० के प्रथम वर्ष में पढ़ता है। छोटा—सुरेन्द्र—गत वर्ष प्रवेशिका परीक्षा पास कर रिपन कालेज में भर्ती हुआ है। कल रात ही को गिरीश इनके स्थान पर जाकर इन लोगों को देखना चाहते थे; परन्तु हेम बाबू ने मना किया। उन्होंने कहा—"वहां गांव के और भी बहुत से लड़के रहते हैं। तुम्हारे विवाह की बात प्रायः सभी जानते होंगे। तुम्हारे जाकर लौट आने पर वे सब खूब मज़ाक उड़ायेंगे और इस तरह बेचारे नरेन्द्र-सुरेन्द्र दोनों को लज्जित होना पड़ेगा। तुम वहां मत जाओ। कल सवेरे मोहन को भेजकर मैं उन्हें यहीं बुलवा लूंगा।" अस्तु।

नरेन्द्र ने कहा—"बाबूजी, आपके आने की ख़बर पेश्तर से मुझे कुछ भी न थी।"

गिरीश ने कहा—"बेटा, आने का कुछ ठीक न था। एकाएक एक काम से आना पड़ा। गुड-फ्राइडे की छुट्टी में

तुम घर नहीं गये, डाइमण्ड-हारबर चले गये, इससे बुआजी बहुत दुखी हो रही थीं।"

हेम बाबू ने हँसकर कहा--"यह सब नये-नये युवा बंगाली हैं। इन्हें गँवई-गांव में कब अच्छा लगता है। ज़रा भी अवकाश मिला कि बस समुद्र देखने को--पहाड़ों पर सैर करने की--सूझती है।"

सुरेन्द्र ने कहा--"हां, समुद्र ही देखने गया था; पर वहां से समुद्र तो दूर है। वहां केवल गंगा का मुहाना है।

कालेज का अध्ययन और खाने-पीने की बातें पूछने के बाद गिरीश ने पूछा--"तुम्हारी गर्मी की छुट्टियां कब से शुरू होंगी?"

सुरेन्द्र ने कहा--"उन्नीस दिन बाद।"

"कितने दिनों की छुट्टी होगी?"

"दो महीने से अधिक। जून के अन्त में कालेज खुलेगा।"

इसके बाद दोनों में चुपके-चुपके इशारे से बातचीत हुई। नरेन्द्र ने धीरे से कहा--"तू क्यों नहीं कहता?" सुरेन्द्र ने कहा--"नहीं दादा, आप ही कहिए।"

हेम बाबू ने हँसकर कहा--"क्यों, क्या कानाफूसी हो रही है?"

सुरेन्द्र ने कहा--"दादा की इच्छा है कि गर्मी की छुट्टियों में हम लोग पुरी घूमने चलें। वहां से समुद्र का दृश्य अच्छा देख पड़ता है।"

गिरीश ने कहा—"गुड-फ्राइडे की छुट्टी में भी घर नहीं गये; और अब गर्मी की छुट्टियों में जाना नहीं चाहते।"

हेम बाबू बोले—"जाने क्यों नहीं देते? वहां का जलवायु बड़ा अच्छा है। स्वास्थ्य को लाभ ही होगा। हां,-हां, नरेन्द्र तुम्हारी दो महीने की छुट्टी है। एक महीना वहां रहना। उसके बाद आकर एक महीना घर रहना।"

नरेन्द्र-सुरेन्द्र पिता की आज्ञा पाने के अभिप्राय से उन की ओर देखने लगे।

गिरीश ने कहा—"वहां रहोगे कहां?"

सुरेन्द्र ने कहा—"मेरे कालेज में एक लड़का पढ़ता है उसके पिता वहां पर डाक्टरी करते हैं। पहले उसी लड़के घर जाकर ठहरेंगे। इसके बाद अपना कुछ न कुछ बन्दोबस्त कर लेंगे।"

थोड़ी देर सोचने के बाद गिरीश ने कहा—"अच्छा, यदि तुम लोगों की ऐसी ही इच्छा है तो चले जाना। कितना खर्च होगा, हिसाब करके बतलाओ। किन्तु देखो, एक महीने से अधिक समय न लगने पाये।"

दोनों भाई उत्साहित हो बोल उठे—"जी नहीं, एक महीने से अधिक समय न लगेगा।"

'फिर आवेंगे' कहकर दोनों भाई विदा हुए। उन चले जाने पर हेम बाबू मुस्करा कर बोले—"तुम सोचते हो

कि लड़कों के सामने किस तरह सफ़ेद बालों पर मौर रख सकूंगा। किन्तु देखो, वह स्वयं ही यहां न रहेंगे।"

गिरीश ने कहा—"हां, मुझे इस बात की बड़ी चिन्ता थी। किन्तु, जैसा आपने कहा, कलकत्ते में रहते-रहते इन लोगों को गांव में रहना कब अच्छा लगता है। यह भी सम्भव है।"

हेम बाबू बोले—"तुम शायद ऐसा ही समझते हो?"

"क्यों, आप ही तो कहते थे।"

मैंने तो केवल उनके सामने ऐसा कह दिया था। वास्तव में यह बात नहीं है। उनके घर न जाने का एक मात्र कारण यह है कि शायद उनके सामने तुम्हें सिर पर मौर रखते लज्जा मालूम दे। इसी से समुद्र देखने के बहाने वे वहां जाना नहीं चाहते। तुम्हारे दोनों लड़के बड़े ही समझदार हैं। उनसे तुम्हें किसी तरह का कष्ट न होगा।"

दफ़र का समय हो जाने से हेम बाबू उठकर स्नानादि करने भीतर चले गये।

गिरीश बाबू का सौदा

संध्या के समय बैठके में तख्त पर बैठे हुए गिरीशचन्
और हेम बाबू चाय पी रहे हैं। हेम बाबू ने पूछा, "आज दि
भर क्या करते रहे ?"

गिरीश बाबू ने उत्तर दिया, "खाना खाने के बाद थो
देर आराम किया। तीन बजे के लगभग उठा। हाथ-मुँ
धोकर कुछ कपड़ा खरीदने के लिए बाज़ार चला गया।"

हेम बाबू ने हँसकर कहा, "अच्छा, यह कहो कि स
राल जाने का सामान खरीदते रहे।"

"जो आप कहें, वही ठीक है।"

"देखूं तो क्या-क्या खरीदा।"

चाय पीकर गिरीश बाबू ने ट्रङ्क उठाकर खोला। कागज में
लपेटे हुए तीन-चार पुलिन्दे उसमें से बाहर निकाल-
कर तख्त पर रख दिये। इन में एक कागज का बक्स भी था।
देखते ही जान पड़ता था कि उसमें जूता है।

हेम बाबू ने कहा, "बहुत सामान खरीद डाला। अच्छा
खोलो तो, देखें। गिरीश ने एक पुलिन्दा खोला। उसमें
से सादी टुइल की चार कमीज़ें और छै रूमाल बाहर
निकले।

हेम बाबू ने कमीज़ों का कपड़ा देखकर कहा, "इन्हें पहिन-
र तुम ससुराल जाओगे ?"

गिरीश ने कहा, "जी हां; क्यों, क्यों, यह ठीक नहीं है ?"

एक रुमाल हाथ में लेकर हेम बाबू ने कहा, "अभी, देखने
तो अच्छा जान पड़ता है; किन्तु धुलने पर असलियत खुल
यगी। कितने में खरीदा ?"

"दस-दस पैसे।"

"पांच-छै आने से कम में रुमाल नहीं मिलता। और
या खरीदा ?"

गिरीश ने बाकी पुलिन्दे खोले। उसमें एक गर्द का और एक
लपाके का कोट, चार बनिआइनें और तीन जोड़ी मोजे थे।
ब सामान देखकर हेम बाबू ने व्यङ्ग-पूर्वक कहा—"क्या सिर्फ
न्हीं कपड़ों को पहिनकर तुम ससुराल जाओगे ?"

गिरीश ने कहा—"क्यों, क्या इन्हें पहिनकर जाने में कुछ
ानि है ?"

"पागल ! धोती पर अब कोट पहिनने का फैशन नहीं रहा।
ाजकल के फैशनेबल लोग कहते हैं कि धोती पर कोट
हने हुए आदमी आधा तीतर आधा बटेर जान पड़ता है।"

"तब फिर क्या पहनना चाहिए ?"

"पैण्ट अथवा पायजामा। धोती पर कोट देखते ही लोग
अनुमान करने लगते हैं कि या तो यह रेल का बाबू है अथवा
कोई देहाती। अच्छा कल किसी दरज़ी की दूकान पर चलकर

दो-तीन मक्खनी-जीन की अच्छी-अच्छी पतलूनें बनवा दूंगा
देखूं, जूता कैसा खरीदा ?"

जूते का वक्स खोलते-खोलते गिरीश ने कहा—"जू
विलायती है। नौ रुपये का मिला।"

जूता देखकर हेम बाबू बोले—"अच्छा तो है;
"टो" बड़ी पतली है।"

गिरीश ने हँसकर कहा—"सुनता हूं, आज-कल
यही फैशन है।"

"हां, कभी था। किन्तु अब सभ्य समाज में इसका फैश
नहीं रहा। अब तो लोग "मीडियम टो" अधिक पसंद करते
हैं। एक जोड़ा पम्प-शू तुम्हें और ख़रीदना पड़ेगा। कल
शनिवार है। दो बजे छुट्टी हो जायगी। उसी समय तुम दफ़्
आ जाना। लौटती बार रास्ते में जूता, मोजा, बनिआइन
इत्यादि जो-जो चीज़ें दरकार हों, ख़रीद लेना। तभी पतलून
भी नपवा दी जायगी।"

गिरीश ने कहा—"जान पड़ता है, तुम मुझे लुटवा
दोगे।"

दूसरे दिन सुनार आया। वह रानी दरवाज़े की आड़
में खड़ी होकर उसको चेतावनी देते हुए कहने लगीं—"देखो
हीरालाल, कोई चीज़ ख़राब न बने। नहीं तो बड़ी बदनामी
होगी।"

"यह कहने की आवश्यकता नहीं" कहकर गहनों की
िस्त और रकम लेकर हीरालाल विदा हुआ।
दो बजे गिरीश बाबू हेम बाबू के दफ़र गये। आवश्यकीय
ी चीज़ें ख़रीदने के बाद हेमबाबू एक दवाख़ाने में घुस
। वहां से न जाने क्या एक शीशी में ले आये। गिरीश
[ने पूछा—"यह क्या है?"
हेम बाबू ने कहा—"एक औषधि है।"
उस दिन रात को भोजन कर चुकने पर हेम बाबू गिरीश
ू को अपने ख़ास कमरे में ले गये। टेबुल पर एक बत्ती
रही थी। उसी के पास एक कुर्सी पर गिरीश को बिठा-
:हेम बाबू ने दरवाज़ा बंद कर लिया।
गिरीश बाबू ने पूछा—"क्या मामला है?"
हेम बाबू ने कुछ भी उत्तर न दिया। केवल हँस पड़े।
म की ख़रीदी हुई वही शीशी खोलकर उन्होंने उसमें से
ा का कुछ अंश एक प्याले में डाला। फिर एक छोटा
। मश उसमें डुबोकर गिरीश के सामने आकर खड़े
ए।
गिरीश ने पूछा—"यह क्या?"
हेम बाबू ने कहा—"यह एक दवा है। तुम्हारे सफ़ेद
ालों में लगाने से यह सब काले हो जायँगे।"
गिरीश सिहर कर बोले—"कलई"!
हेम बाबू बोले—"तुम नितान्त पागल ही रहे। कलई

क्यों ? एक दवा है—"हेअर डाई" । इस उम्र में विवाह क
पर अभी न जाने कितनी औषधियों की आवश्यकता पड़ेगी।
यह कहकर वह हँसने लगे ।

गिरीश कुर्सी से उठ खड़े हुए। "भाई, मुझे क्ष
करो। मैं यह कुछ न करूंगा। विवाह करने पर कलई
करनी पड़ेगी, यह बड़े मज़े की बात कहते हो। कल स
नरेन्द्र-सुरेन्द्र आयेंगे। वह देखकर क्या कहेंगे?"

इसी समय हेम बाबू की स्त्री दरवाज़ा खोलकर आगई
उन्होंने आते ही पूछा—"तुम लोग लड़ते क्यों हो?"

गिरीश ने कहा—"देखो भाभी, दादा मेरे बालों पर क
करना चाहते हैं।" हेम बाबू ने बहुत समझाया; पर गिरी
ने एक न मानी। कहने लगे—"दादा, चाय पीने को कहो
पीऊंगा। पतलून पहिनने को कहोगे, पहिनूंगा। 'पम्प शू'
भी इस्तेमाल करूंगा। किन्तु बालों में कलई न करूंगा—
करने दूंगा।"

बहूरानी ने कहा—"अरे रहने दो। बाल सफेद हो ज
से कोई बूढ़ा नहीं कहलाता।"

हेम बाबू ने दवा शीशी में डालते हुए कहा—"दाम व्य
ही गये।"

बहूरानी ने मुसकराते हुए कहा—"दाम व्यर्थ क्यों ग
घवड़ाओ नहीं। मेरे शरीर की जो दशा है, उससे मेरे अधि
दिन जिन्दा रहने की आशा नहीं है। आखिर तुम्हें उस

आवश्यकता पड़ेगी ही। इससे उसे सुरक्षित रखो।"

रात में गिरीश को बहुत देर तक नींद न आई। इधर कई दिनों से, आदत न रहते हुए चाय पीने के कारण, रात में उन्हें अच्छी तरह से नींद नहीं आती। पड़े-पड़े सोचने लगे कि कलकत्ते आने से बहुत रुपये ख़र्च हो गये, फिर भी कितनी ही आवश्यकीय वस्तुएँ अभी ख़रीदने को बाक़ी हैं। इस समय फ़िज़ूल ख़र्च हो रहा है। न हो तो अभी गाँव लौट चलें। दस-बारह दिन बाद फिर कलकत्ते आना ही पड़ेगा। तब गहना भी ले जायँगे और बाक़ी सब सामान भी ख़रीद लेंगे। बहू-रानी ने जो जो गहने बतलाये हैं उनकी कीमत कम से कम दो हज़ार रुपये देने पड़ेंगे। दोनों ओर से लोगों को जो दावतें दी जायँगी, वह ख़र्च भी सब अपने ऊपर है। इसके अतिरिक्त जग-दीश की सब रेहन की चीजें छोड़नी पड़ेंगी। इस प्रकार लग-भग पाँच हज़ार रुपये इस विवाह में ख़र्च हो जायँगे। यदि पण्डितजी की भविष्य-वाणी ठीक न हुई तो ये पांच हज़ार कहां से पूरे होंगे?

दूसरे दिन सवेरे कमरे मे बैठे हुए दोनों मित्र चाय पी रहे थे। इसी समय एक युवक ने प्रवेश कर पूछा—"डर्बी की लाटरी के टिकट लाया हूं। लीजिएगा?" यह कहकर उसने टिकट की किताब निकाली।

हेम बाबू ने कहा—"हां, हां, एक दे दो। प्रतिवर्ष ही तो एक लेता हूं; पर होता कुछ भी नहीं।"

गिरीश ने कौतूहलवश पूछा—"क्या है ?"

हेम बाबू ने कहा—"विलायत में घुड़दौड़ होती है। उसी के टिकट यहां बिकते हैं। जिसके भाग्य में होता है उसे इनाम मिलता है।"

"क्या मिलता है ?"

"पहिला इनाम ३ लाख रुपये का है। क्यों जी ?"

युवक ने उत्तर दिया—"पिछले साल ३ लाख बीस हज़ार का पहला इनाम था।"

गिरीश ने विस्मयपूर्वक कहा—"दस रुपये का टिकट लेने से ३ लाख मिलते हैं ! क्या कहते हो ? मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता।"

हेम बाबू ने कहा—"लाखों आदमी टिकट खरीदते हैं; पर मिलता थोड़े ही आदमियों को है। देखो न, मैं ही बीस वर्ष से एक टिकट खरीदता हूं; पर कभी कुछ भी नहीं मिला। भाई, यह सब भाग्य की बात है।"

गिरीश ने कहा—"मैं भी एक बार भाग्य-परीक्षा करूंगा।"

हेम बाबू बोले—"हां-हां, देखो न, शायद नई बहू के भाग्य ही से कुछ मिल जाय।"

गिरीश थोड़ी देर कुछ सोचते रहे। फिर दस रुपये का नोट बक्स से निकालकर दिया।

युवक ने गिरीश बाबू का नाम, पता, आदि लिखकर कहा—"कोई एक छद्म नाम बताइए।"

गिरीश ने पूछा—"यह क्यों ?"

हेम बाबू ने समझाकर कहा—"कोई कल्पित नाम लिख दिया जाता है। हिन्दुओं में प्रायः किसी न किसी देवता का नाम लिख देते हैं। ऐसा करने से शुभ होता है। कोई नाम तुम भी बता दो।"

गिरीश बड़े असमंजस में पड़ गये। किस देवता का नाम लें, किस का न लें। उन्हें चिन्तित देख हेम बाबू ने कहा—"लाओ, मैं तुम्हारी ओर से लिख दूं।" यह कहकर उन्हों ने टिकट की किताब पर कुछ लिख दिया। युवक टिकट देकर चला गया।

गिरीश ने अपना टिकट लेते हुए हेम बाबू से पूछा—"किस देवता का नाम लिख दिया ? उन्हों ने गंभीरता से कहा—"देवता नहीं, देवी का नाम लिखा है।"

"काली या दुर्गा, क्या लिखा ?"

"काली नहीं, दुर्गा नहीं, प्रभावती लिख दिया है।"

"नहीं, ठीक बताइए, आप तो सब बातों में मज़ाक करने लगते हैं।"

"सच मानो, प्रभावती ही लिख दिया है। देखो न, Prabhavati"

गिरीश अङ्गरेजी अक्षर पहचानते थे। देखा, वास्तव में ही प्रभावती लिखा था। मन ही मन खुश हुए; पर भाव छिपाते हुए "उँः, यह क्या लिखा" कहकर टिकट को यत्न-

पूर्वक बक्स में रख दिया।"

इसी दिन दोपहर की गाड़ी से गिरीश गांव को रवाना हुए।

वैद्यवाड़ी स्टेशन पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई। इस स्टेशन से गाड़ी छूटते ही गिरीश खिड़की से बाहर अंधकार की ओर झांकते हुए सोचने लगे—ईश्वर की लीला समझना बड़ा कठिन है। देखो न, कलकत्ते में कितनी ही बार आया हूँ, पर आज तक कभी डर्बी-लाटरी का नाम भी नहीं सुना। प्रभा के साथ विवाह की बातचीत और लाटरी के टिकट का खरीदना, फिर तेंतीस करोड़ देवी-देवताओं के रहते हुए हेमदादा के हाथों से प्रभा नाम लिखा जाना, यह सब रहस्य से खाली नहीं। इसमें अवश्य ईश्वर का हाथ है। ईश्वर ने देखा कि गिरीश तो आज घर जा रहे हैं, झट उस युवक को भेज दिया। मेरी भी इच्छा टिकट खरीदने की कर दी और हेमदादा के मन में प्रभा का नाम लिख देने की इच्छा उत्पन्न कर दी। ठीक है, शास्त्र कभी मिथ्या नहीं हो सकता। हिन्दू धर्म जब तक संसार में बना है, तब तक यह सब बातें माननी ही पड़ेंगी।

बुआजी का दूत-कार्य

कलकत्ते से वापस आकर गिरीश ने बुआजी से कहा, "बुआजी, अब बहुत दिन तो नहीं हैं, तिलक हो जाता तो अच्छा था।"

भतीजे के इस आग्रह को देखकर मन ही मन हँसते हुए बुआजी ने कहा, "अभी बहुत समय है। लगभग एक महीना बाकी है। अपने यहां सब प्रबन्ध कर लो। तिलक तो चढ़ ही जायगा।"

गिरीश ने कहा—"बुआजी, आप तो समझती नहीं। चारों ओर शत्रु ही शत्रु हैं। गांव के लोगों का विश्वास ही क्या! न जाने कब किस को क्या सुझा दें। कोई किसी का भला देख नहीं सकता। यदि किसी प्रकार गड़बड़ हो गया, तो जो सामान—गहना, कपड़ा—खरीदा गया वह सब व्यर्थ ही जायगा।"

बुआजी बोलीं—"प्रभा की माँ से मिलने पर कहूँगी।"

कब बुआजी प्रभा के घर जायँगी, किस प्रकार बातचीत करेंगी, इत्यादि बातों की सलाह करने के बाद गिरीश ने कहा—"बुआजी, न हो तो आप यह कहना कि पांच-छः दिन में गिरीश को किसी काम से कलकत्ते जाना पड़ेगा। लौटने

में देर होगी। विवाह से दो ही तीन दिन पहले आ सकेंगे। तब सब रस्मों के करने में बड़ी जल्दी करनी पड़ेगी। इससे मेरी इच्छा है कि तिलक इधर ही चढ़ जाता तो अच्छा था।"

कल बुआजी का प्रभा के घर जाना निश्चय हो जाने पर गिरीश ने पूछा—"क्यों बुआजी, तिलक हो जाने पर तो विवाह पक्का हो जाता है ?"

बुआजी ने कहा—"हां, एक तरह पक्का ही रहता है; पर विशेषतया पक्का नहीं रहता। यों तो शरीर-में हल्दी लग जाने से कन्या का विवाह करना ही पड़ता है, अन्यथा कन्यापक्षवाले जातिच्युत हो जाते हैं; पर इसमें वैसा कुछ नहीं होता।"

"तो क्या तिलक हो जाने पर भी यदि कन्यापक्षवाले चाहें तो विवाह नहीं कर सकते ?"

"हां, हां, क्यों नहीं ! अभी उस वर्ष मेरी ससुराल ही में—"

गिरीश ने बीच ही में रोककर कहा—"तिलक हो जाने के बाद जो पक्ष विवाह छोड़ दे उसकी क्या समाज में नन्दा नहीं होती ?"

"हां, निन्दा तो अवश्य ही होती है; किन्तु कन्यापक्षवालों के लिए कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं।"

दूसरे दिन बुआजी, सलाह के मुताबिक, जगदीश बन्द्योपाध्याय के घर गईं। वहां जाकर उन्होंने जगदीश की स्त्री

से बात-चीत की; किन्तु सब बातें सुन लेने पर भी जगदीश की स्त्री ने कुछ स्पष्ट उत्तर न दिया। सिर्फ इतना ही कहा—"अच्छा, घर के मालिक से पूछने पर जैसा कुछ उत्तर मिलेगा, कल कहला भेजूंगी।"

घर आकर बुआजी ने गिरीश से कहा—"क्या जानूं बेटा, उनका मन-मन्तर तो कुछ भी समझ में नहीं आता।"

गिरीश ने उत्कंठित होकर पूछा—"क्यों?"

बुआजी ने, जो जो बातें वहां हुई थीं, सब कह सुनाईं। कहने लगीं, "न जाने वह कैसी फटी-फटी बातें करती थी। प्रत्येक बात का उत्तर गोलमाल शब्दों ही से देती थी।"

यह सुन गिरीश ने कहा, "मैं तो पहले ही कहता था कि लोग विघ्न डालेंगे। किसी ने बहका दिया होगा कि कोई अच्छा लड़का ढूंढ़कर विवाह कर डालना। अभी कुछ कहो-सुनो नहीं।" इसके बाद मन ही मन गिरीश ने स्थिर किया कि जिस दिन दूसरी जगह विवाह होने की खबर सुनेंगे उसके दूसरे ही दिन जगदीश पर रुपये की नालिश कर उसका घरबार सब नीलाम करा लेंगे।

बुआजी, गिरीश के मन का भाव समझकर, धीरज देने के अभिप्राय से, कहने लगीं—"यदि वे विवाह नहीं करेंगे तो चिन्ता ही काहे की है? क्या दुनियां में और कन्या ही न मिलेगी? उसे जो कुछ कहना हो, साफ-साफ कहे। मैं इसी

आकर तिलक करेंगे।" कहना व्यर्थ है कि बुआजी को इसमें कुछ आपत्ति न हुई।

गिरीश ने, यह सुनते ही, हलवाइयों को अच्छी-अच्छी मिठाई तैयार करने के लिए हुक्म दिया। साथ ही इष्ट-मित्रों और बन्धु-बांधवों को निमन्त्रण भी कहला भेजा।

तिलक

चार बजे का समय है। गिरीश बाबू के कमरे में हम लोगों के पूर्वपरिचित भट्टाचार्य महाशय, सतीशदत्त, माधव चक्रवर्ती नित्यानन्द राय, और दुर्गादास अधिकारी आदि कई लोग बैठे हुए हँसी-दिल्लगी कर रहे हैं। अन्य दिनों की अपेक्षा आज कमरे की सजावट कुछ और ही है। पुरानी मैली जाजिम के स्थान पर आज एक साफ़ तथा नई जाजिम फर्श की शोभा बढ़ा रही है। स्थान-स्थान पर तकिये नज़र आते हैं। दो हुक्के बराबर इधर-उधर घूम-फिरकर सब का मनोरञ्जन कर रहे हैं। एक नौकर बैठा पंखा खींच रहा है, और एक पान देने में लगा है। गिरीश बाबू तथा अन्य लोग भी आज कुछ विशेष ठाट से दिखाई पड़ रहे हैं। गिरीश बाबू ने अपनी दाढ़ी फ्रेंच कट की करवा दी है। बाल भी भली भांति बने हुए

ज्येष्ठ में उससे कहीं सुन्दर लड़की के साथ तेरा विवाह करा दूंगी। तू तो अब तक विवाह करने पर राजी ही नहीं था। नहीं तो अब तक विवाह न जाने कभी का हो जाता।"

"देखूं, कल क्या खबर आती है" यह कहकर गिरीश बाहर चले गये।

उधर जगदीश के घर में स्त्री-पुरुष दोनों ही बड़ी गहरी चिन्ता में पड़ गये हैं। स्त्री ने कहा, "ऐसी दशा में कर ही क्या सकती हूँ? उनकी ओर से खींचाखींच है। उसमें टाल-मटोल चल ही नहीं सकती। यदि हरिपद कुछ ठीक न कर सका तो लाचारी से यह कार्य करना ही पड़ेगा।"

जगदीश ने कहा—"यही बात है। बड़ी विषम समस्या सामने है। क्या करें, क्या न करें, समझ में नहीं आता।" इसके बाद वे हरिपद का आखिरी पत्र निकाल चश्मा लगाकर पढ़ने लगे।

आधी रात तक लगातार परामर्श होने के बाद अन्त में यही निश्चय हुआ कि इस समय तिलक चढ़ जाने दो। यदि हरिपद कुछ ठीक कर सका तो फिर इस सम्बन्ध को छोड़ देंगे। लोग निन्दा ही तो करेंगे; कर लेंगे, और उपाय ही क्या है?

दूसरे दिन दस बजे के करीब डाकघर से लौटते समय हरिपद का पत्र न पाकर जगदीश ने गिरीश की बुआजी से कह दिया, "कल शाम को चार बजे के बाद गोधूलि लग्न में

आकर तिलक करो।" कहना व्यर्थ है कि बुआजी को इसमें कुछ आपत्ति न हुई।

गिरीश ने, यह सुनते ही, हलवाइयों को अच्छी-अच्छी मिठाई तैयार करने के लिए हुक्म दिया। साथ ही इष्ट-मित्रों और बन्धु-बांधवों को निमन्त्रण भी कहला भेजा।

तिलक

चार बजे का समय है। गिरीश बाबू के कमरे में हम लोगों के पूर्वपरिचित भट्टाचार्य महाशय, सतीशदत्त, माधव चक्रवर्ती नित्यानन्द राय, और दुर्गादास अधिकारी आदि कई लोग बैठे हुए हँसी-दिल्लगी कर रहे हैं। अन्य दिनों की अपेक्षा आज कमरे की सजावट कुछ और ही है। पुरानी मैली जाजिम के स्थान पर आज एक साफ़ तथा नई जाजिम फर्श की शोभा बढ़ा रही है। स्थान-स्थान पर तकिये नज़र आते हैं। दो हुक्के बराबर इधर-उधर घूम-फिरकर सब का मनोरञ्जन कर रहे हैं। एक नौकर बैठा पंखा खींच रहा है, और एक पान देने में लगा है। गिरीश बाबू तथा अन्य लोग भी आज कुछ विशेष ठाट में दिखाई पड़ रहे हैं। गिरीश बाबू ने अपनी दाढ़ी फ्रेंच कट की कटवा दी है। बाल भी भली भांति बने हुए

सन्देह ही क्या है? उसके बाद मित्र-संग्रह। देखिए न, इस विवाह की सूचना मात्र ही से हम सब मित्रगण इकट्ठे हुए हैं। और भी न जाने कितने एकत्र होंगे। अधनेषु बन्धुषु''— हम सब मित्रों के गरीब होने में संदेह ही क्या है? विवाह के सात दिन पहले से सात दिन बाद तक किसी के यहां हांड़ी न चढ़ेगी।'' इतना कहकर उन्होंने थोड़ी सी हुलास सूंघी। सब लोग उनकी बात सुनकर हँसने लगे।

बेचारा चक्रवर्ती सर्दी के कारण भली भांति हँस न पाता था। बोला, ''जरा सी हुलास दो। उसी से सर्दी कुछ कम हो जायगी।''

सतीश ने कहा, ''दादा, सब की व्याख्या तो की; किन्तु 'प्रयासु नारीषु' को क्यों छोड़ दिया!''

भट्टाचार्यजी ने उत्तर दिया, ''गिरीश मुझे दादा कहते हैं। इस लिए इसकी व्याख्या तुम्हीं करो।''

सतीश बोले, ''रिपुत्रय भी मिलता है। मैं किसी का नाम लेना नहीं चाहता; पर इस गांव में ऐसे भी लोग हैं जो गिरीश बाबू के इस विवाह की बातचीत सुनते ही मन ही मन कुढ़ मरते हैं।''

दुर्गादास अधिकारी ने कहा, ''हैं नहीं क्या, उस दिन मैं भट्टाचार्यपाड़े से चला आ रहा था। राह में यादव भट्टाचार्य मिले। कहने लगे, मैंने सुना है कि गिरीश प्रभा के साथ कोर्टशिप कर रहे हैं। मैंने उत्तर दिया—हां, विवाह

निश्चय होने की बात तो मुझे मालूम है; परन्तु कोर्टशिप की बात नहीं जानता। उन्होंने कहा, गांव में बड़ा अनर्थ हो रहा है। एकदम घोर कलियुग आ गया।"

सतीशदत्त ने कहा—"हां, मुझसे भी यादव ने कल या परसों यही बात कही थी। साथ ही उन्होंने मुझसे यह बात भी पूछी—"क्योंजी, प्रभा इस बूढ़े से विवाह करने पर अड़ी हुई है। उसे वह बूढ़ा क्यों इतना पसंद है?"

भट्टाचार्यजी ने पूछा, "तुमने क्या जवाब दिया?"

सतीश ने कहा—"मैंने अपने स्वभाव के अनुसार एक श्लोक सुनाकर उससे कहा कि किसको क्या अच्छा लगता है, यह समझना बड़ा कठिन है। श्लोक यह है—

'दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सुधापि मधुरैव।
तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम् ॥

माधव चक्रवर्ती ने पूछा—'अर्थात्?"

सतीश ने कहा—"अर्थात् दही, शहद, अंगूर और अमृत इत्यादि सभी चीजें मीठी होती हैं; पर जिसका चित्त जिस पर लगा रहता है उसे वही मीठा जान पड़ता है।" यह कहकर थोड़ी देर गिरीश की ओर देखते हुए उसने कटाक्ष किया।

चक्रवर्ती ने कहा—"वाहवा, वाहवा, क्या यह अनुवाद [illegible] ने ही किया? क्या सुन्दर अनुवाद हुआ है।"

भट्टाचार्यजी ने कहा—"सतीश बड़ी अच्छी कविता करता

। मुझे पहले बहुत सुनाया करता था।"

निरयानन्द ने कहा—"ओहो! आप कविता भी करते हैं! हमें तो मालूम ही न था। अब भी आप कविता करते हैं या नहीं?"

भट्टाचार्य जी बोले—"अब तो बहुत दिनों से उसने छोड़ दी है।"

गिरीश ने पूछा—"सतीश, छोड़ क्यों दी?"

सतीश ने पेट पर हाथ फेरते हुए कहा—"दादा, पेट की चिन्ता बड़ी बुरी होती है। इस चिन्ता के मारे समय ही नहीं मिलता। छोड़ न दें, क्या करें।"

गिरीश ने मन ही मन निश्चय किया, "यदि शास्त्र की बात ठीक निकली और इस बार मेरे पुत्र हुआ तो सतीश को अधिक वेतन देकर उसको प्राइवेट शिक्षक नियुक्त करूंगा। ऐसा योग्य व्यक्ति बेचारा रुपये के अभाव से कष्ट भोग रहा है।

सतीशचन्द्र ने नाक से सांस ऊपर खींचते हुए चक्रवर्ती से कहा—"आहा, पूड़ियों की कैसी खुशबू आ रही है!"

चक्रवर्ती ने कहा—"मुझे क्या मालूम, मेरी नाक तो एकदम ही बन्द है।"

सतीश ने कहना शुरू किया—"आओ, जगदीश, आओ। जल्दी से आकर तिलक कर आओ। भूख के मारे तो आंतें ऐंठ रही हैं। सारा दिन स्कूल में पढ़ाते-पढ़ाते अब भूख के कारण पेट में चूहे कूद रहे हैं।"

हरे मुरारे मधुकैटभारे,
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।
खास्ता लूची सौरभ मुग्धचित्तं,
विभुक्षितं माम् जगदीश रक्ष॥

"जगदीश, प्राण न मारो, वावा! रक्षा करो, रक्षा करो।"

इस श्लोक से चक्रवर्ती को सब से अधिक आनन्द हुआ। कहने लगे,—"तुबलें तो वुहँ ही बन्द कर दिया। जगदीश के लाव का भी श्लोक बला दिया। अच्छा, वेले लाव का कोई श्लोक बलाओ, तब तुम्हालो पाण्डित्य सबभ्क पल्हे।"

सतीश कुछ देर चुप रहकर बोले—"अच्छा, सुनो—

आपद्गतः खलु महाशय चक्रवर्ती,
विस्तारयत्यकृत पूर्वमुदार भावम्।
काला गुरुर्दहन मध्यगतः समस्तात्,
लोकोत्तरं परिमलं प्रकटी करोति॥"

चक्रवर्ती ने कहा, "अले, कहते ही कहते वल ही वल लच्वला कल दी!"

भट्टाचार्यजी ने हँसकर कहा,—"नहीं, यह बहुत पुराना श्लोक है।"

इसी समय जगदीश दो-चार भले आदमियों के साथ आते दिखाई पड़े। उनके पहुँचते ही सब ने उठकर उनका [illegible]र किया। थोड़ी देर वाद जगदीश ने शास्त्र की [illegible] की क्रिया समाप्त की।

दूसरे दिन भट्टाचार्यजी ने घर-पक्ष की ओर से कन्या को आशीर्वाद दिया। गिरीश की चिन्ता दूर हुई। वह सोचने लगे, इतने दिनों के बाद अब जाकर मामला कुछ पक्का हुआ।

आशा और निराशा

सन्ध्या होने से कुछ पहले एक युवक, जिसकी उम्र लगभग इक्कीस वर्ष की होगी, बहूबाजार से गोलदिग्घी की ओर पैदल चला जा रहा है। गोलदिग्घी के फाटक पर पहुँचते ही वह खड़ा होकर इधर-उधर देखने लगा। जिस की खोज में यह युवक चारों ओर देख रहा है उसे वहां न पाकर हैरिसन रोड की ओर देखने लगा।

इस युवक का नाम राजकुमार चट्टोपाध्याय है। मामूली जीन का एक कोट पहने हुए है, जिस में पांच बटनों में से दो तो हैं ही नहीं। शेष जो तीन हैं भी, उन में दो एक किस्म के और एक दूसरे किस्म का। चलने में हाथ हिलने से कमीज का बहुत सा हिस्सा दिखाई पड़ता है; क्योंकि आस्तीन की सिलाई उधड़ी हुई है। कोट के एक जेब की सिलाई भी खुल गई है। पैर में बादामी रंग का जूता पहिने है। उसमें भी दो जगह पत्तियां लगी हुई हैं।

हरे मुरारे मधुकैटभारे,
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।
खास्ता लूची सौरभ मुग्धचित्तं,
विभुक्षितं माम् जगदीश रक्ष॥

"जगदीश, प्राण न मारो, बाबा! रक्षा करो, रक्षा कर

इस श्लोक से चक्रवर्त्ती को सब से अधिक आनन्द
कहने लगे,—"तुबलें तो बुहँ ही बल्द कर दिया। जगदी
लाब का भी श्लोक बला दिया। अच्छा, बेले लाब क
श्लोक बलाओ, तब तुम्हाला पाण्डित्य सबभ पलहे।"

सतीश कुछ देर चुप रहकर बोले—"अच्छा, सुन

आपद्गतः खलु महाशय चक्रवर्ती,
विस्तारयत्यकृत पूर्वमुदार भावम्।
काला गुरुर्दहन मध्यगतः समस्तात्,
लोकोत्तरं परिमलं प्रकटी करोति॥"

चक्रवर्ती ने कहा, "अले, कहते ही कहत
"

सा भोजन कर लेने के बाद अभी तक उसे खाने को कुछ नहीं मिला। इसी से उसका मुहँ सूख गया है। चेहरे पर उदासी छाई हुई है।

नौकरी करते हुए राजकुमार को अभी थोड़े दिन हुए हैं। जब तक उसकी माता जीवित रहीं तब तक वह कुछ न कुछ रुपया हर महीने भेजती थीं, जिस से राजकुमार की पढ़ाई का खर्च चला जाता था। थोड़ा रुपया कम पड़ता था। वह राजकुमार दो-एक ट्यूशन करके कमा लेता था। इस प्रकार जैसे-तैसे वह एफ० ए० तक पढ़ता रहा। इसके बाद जब उसकी माता की मृत्यु हो गई तब उसने सोचा, "अब अधिक पढ़कर होगा ही क्या ! जिसका कष्ट दूर करने के लिए मैं पढ़ता था वह तो संसार से चल बसी। फिर अब चिन्ता ही किस की रही। कालेज में पढ़ने का खर्च भी इतना अधिक है कि बिना ट्यूशन किये पूरा ही नहीं पड़ता और ट्यूशन करने में समय का बहुत बड़ा भाग निकल जाता है, जिससे मैं भली भांति पढ़-लिख नहीं सकता। यदि ज्ञानार्जन के लिए पढ़ना है तो सबेरे और शाम का वक्त काफ़ी है।" इन्हीं सब बातों को सोचकर उसने जीविका-निर्वाह के लिए तीस रुपये महीने पर नौकरी कर ली है। यद्यपि वेतन कम है; पर भविष्य में उन्नति की यथेष्ट आशा है। इसी से उसने इतने कम वेतन पर नौकरी स्वीकार कर ली है। इन दिनों वह प्रति मास खर्च से कुछ रुपया बचाकर अपने पढ़ने के

राजकुमार बड़ा ही ग़रीब है। इस संसार में उसके केवल एक विधवा माता थी। वह भी, प्रायः साल भर हुआ, परलोक सिधार गई। परिवार में—भाई, बहिन, ताऊ, चाचा, मामा, फूफा इत्यादि—कोई नहीं। राजकुमार के समान ग़रीब और अनाथ युवक इस संसार में बहुत ही कम होंगे। गांव में मकान था। वह माता के मर जाने पर दूसरों के हाथ चला गया। थोड़ी सी ज़मीन थी। उस पर भी दूसरों ने कब्ज़ा कर लिया। जिस आदमी ने घर-ज़मीन पर दख़ल कर लिया था उसने राजकुमार से कहा कि तेरी मां ने मुझसे दो सौ रुपये उधार लेकर घर, ज़मीन सब रेहन रख दिया था। अब सूद और असल, दोनों मिलाकर पांच सौ रुपये चाहिएँ। लोगों के कहने पर राजकुमार ने जाकर उससे रेहननामा देखना चाहा; किन्तु उसने उत्तर दिया, रेहननामा देखने से क्या लाभ होगा? जब तुम्हें मेरी बात पर विश्वास ही नहीं है तो तुम यह भी कह सकते हो कि यह रेहननामा जाली है। इससे बेहतर है कि तुम मेरे ऊपर अदालत में नालिश करो। वहीं तुम यह रेहननामा देख लेना। अस्तु।

सीनेटहॉल के फाटक पर थोड़ी देर खड़े रहने के बाद राजकुमार विद्यासागर की मूर्ति के पास जाकर एक बेञ्च पर बैठ गया और फाटक की ओर देखने लगा।

राजकुमार बहुत थका हुआ है। सारा दिन आफ़िस का काम करके शाम को घर जा रहा है। सवेरे भी बड़े [illegible]

सा भोजन कर लेने के बाद अभी तक उसे खाने को कुछ नहीं मिला। इसी से उसका मुहँ सूख गया है। चेहरे पर उदासी छाई हुई है।

नौकरी करते हुए राजकुमार को अभी थोड़े दिन हुए हैं। जब तक उसकी माता जीवित रहीं तब तक वह कुछ न कुछ रुपया हर महीने भेजती थीं, जिस से राजकुमार की पढ़ाई का खर्च चला जाता था। थोड़ा रुपया कम पढ़ता था। वह राजकुमार दो-एक ट्यूशन करके कमा लेता था। इस प्रकार जैसे-तैसे वह एफ० ए० तक पढ़ता रहा। इसके बाद जब उसकी माता की मृत्यु हो गई तब उसने सोचा, "अब अधिक पढ़कर होगा ही क्या! जिसका कष्ट दूर करने के लिए मैं पढ़ता था वह तो संसार से चल बसी। फिर अब चिन्ता ही किस की रही। कालेज में पढ़ने का खर्च भी इतना अधिक है कि बिना ट्यूशन किये पूरा ही नहीं पढ़ता और ट्यूशन करने में समय का बहुत बड़ा भाग निकल जाता है, जिससे मैं भली भांति पढ़-लिख नहीं सकता। यदि ज्ञानार्जन के लिए पढ़ना है तो सवेरे और शाम का वक्त काफ़ी है।" इन्हीं सब बातों को सोचकर उसने जीविका-निर्वाह के लिए बीस रुपये महीने पर नौकरी कर ली है। यद्यपि वेतन कम है; पर भविष्य में उन्नति की यथेष्ट आशा है। इसी से उसने इतने कम वेतन पर नौकरी स्वीकार कर ली है। इन दिनों वह प्रति मास खर्च से कुछ रुपया बचाकर अपने पढ़ने के

लिये कुछ पुस्तकें खरीद लेता है। अतएव वह कपड़े इत्यादि ठीक नहीं रख सकता। अस्तु।

सन्ध्या होने में अब अधिक देर नहीं है। गोलदिग्घी में वायुसेवन के लिए झुण्ड के झुण्ड विद्यार्थी आने लगे। उनकी हँसी-दिल्लगी, किल्लोल तथा तर्क-वितर्क से वह स्थान गुलजार हो गया। किन्तु राजकुमार जिसकी राह इतनी देर से देख रहा है वह अभी तक नहीं आया।

"गुडफ्राइडे" की छुट्टी में ही हरिपद कलकत्ते वापस चला आया था। उसने अपने मित्रों से सब हाल कह सुनाया राजकुमार से भी उसने सारा वृत्तान्त कह दिया था; क्योंकि कई वर्षों से राजकुमार से उसकी मित्रता थी। बीच-बीच में राजकुमार हरिपद के साथ उसके घर त्रिवेणी गांव में कई बार जा चुका है। अभी छै महीने हुए, जब वह त्रिवेणी गया था। उसने प्रभा को देखा था। प्रभा पर यह विपत्ति सुनकर उसके चित्त में बड़ा ही दुःख हुआ। राजकुमार जाति और कुल में हरिपद से किसी प्रकार कम नहीं। अनायास ही उसका विवाह प्रभा के साथ हो सकता है; किन्तु वह इतना दरिद्र है कि हरिपद ने उसको इस योग्य समझा ही नहीं। उससे भी अन्य मित्रों की तरह वर ढूढ़ने के लिए अनुरोध किया।

जिस दिन हरिपद ने राजकुमार से वर खोजने के लिए कहा उसी दिन संध्या समय उसने चटाई पर लेटे

लेटे, मन ही मन, प्रभा के घर का अनुसंधान कर लिया। ोड़ी देर में वह जागते हुए भी, प्रभा के साथ अपना विवाह ो जाने का, स्वप्न देखने लगा। प्रभा के माता-पिता और ाई अब उसके माता-पिता और भाई हो गये। अब वह इस ंसार में निःसहाय और अकेला नहीं रहा। उसके भी ात्मीय दिखाई देने लगे। कुछ दिनों के बाद वह बीमार हो ाया। चार-पांच दिनों तक वह दफ़्तर न जा सका। रोग-शैय्या र पड़े-पड़े वह सोचने लगा, मानों प्रभावती उसके सिरहाने ड़ी हुई उसके मस्तक पर हाथ फेर-फेरकर कह रही है —"अब ुम्हारी तबियत कैसी है?" बीमारी का हाल सुनकर हरिपद ासे देखने आया। प्रभा के सम्बन्ध में राजकुमार ने जो सुख-ल्पना अपने मन में की थी, वास्तव में हरिपद ने बैठकर वैसाही केया। अर्थात् सिरहाने बैठकर मस्तक पर हाथ फेरते हुए उसने ाबियत का हाल पूछा। प्यास लगने पर पानी दिया। स्नेह ारे शब्दों में उसे धीरज बँधाया। उससे राजकुमार की व्यथा ुछ कम हो गई। वह अब कभी-कभी बड़े ही प्रेम से हरिपद ो 'भाई' कहकर सम्बोधित करता था; पर बेचारा हरिपद ास भाई शब्द के गूढ़ अर्थ को न समझ पाता था।

बीमारी से अच्छे हो जाने पर कई दिनों के बाद दोनों आपस ें मिले। प्रभा के विवाह के सम्बन्ध में बात-चीत हुई। मालूम हुआ कि अभी तक कोई वर ठीक न हो सका; और न ठीक होने की आशा है। [illegible]

से तो नहीं कहा; किन्तु राजकुमार को बातों से पता लग गया कि हरिपद की इच्छा उसी के साथ विवाह कर देने की है। आज सवेरे, दफ़्र जाते समय, बहूबाजार की मोड़ पर जब हरिपद मिला था तो उसने पूछा था—"शाम को कहां मिलोगे ? एक जरूरी काम है।" राजकुमार ने जब उसके यहां आ जाने को कहा तो वह बोला—"वहां सुविधा न होगी। अच्छा हो, यदि तुम मुझे गोलदिग्घी के फाटक पर मिलो।" राजकुमार ने कहा—"अच्छा, मैं छः बजे के लगभग वहीं विद्यासागर की मूर्ति के पास मिलूंगा।" इसी से राजकुमार इस समय यहां बैठा हुआ है।

परन्तु हरिपद तो अभी तक नहीं आया। बहूबाजार की मोड़ पर जब उसने उपयुक्त बातें कही थीं तब राजकुमार के हृदय में यह विश्वास हो गया था कि निश्चय ही हरिपद अपनी बहिन के विवाह की बात कहेगा और उससे अनुरोध करेगा कि वह प्रभा के साथ विवाह करने को राज़ी हो जाय। किन्तु हरिपद के आने में देर होते देखकर राजकुमार के चित्त में सन्देह होने लगा। क्या दिन में हरिपद को कोई दूसरा वर मिल गया ? क्या उसने मुझे छोड़ दिया ? इत्यादि।

मन में इस सन्देह के उठते ही राजकुमार को बड़ा कष्ट होने लगा। सोचने लगा, कई दिनों से चुप-चाप जिस आशालतिका को पल्लवित कर रहा था, क्या वह यों ही मुरझा जायगी ?

उसने अपने मन को बहुतेरा समझाया। सोचने लगा, मैं प्रभा के साथ इसलिए विवाह करना चाहता था, कि उसका कष्ट दूर हो जाय। यदि वह कष्ट दूसरा घर मिल जाने से दूर होता है तो फिर मेरी हानि ही क्या है? किन्तु न जाने क्यों, राजकुमार का हृदय यह सुनने को तैयार नहीं था। एक विशेष प्रकार की भावना के साथ उसे उत्तर मिलता—हानि क्यों नहीं है? ऐसा होने से जीवन दुःखमय हो जायगा।

इस प्रकार आशा और निराशा की लहरें जिस समय राजकुमार के चित्त को चंचल कर रही थीं, चारों ओर गैस के सरकारी लैम्प जल उठे। साथ ही हरिपद ने भी आकर कहा—"भाई, मुझे बड़ी देर हो गई। तुम यहां कितनी देर से बैठे हो?"

"लगभग एक घंटे से।"

"घर नहीं गये?"

"नहीं सीधा दफ़्तर से आ रहा हूं। सबेरे भी सीधा दफ़्तर से आने को कहा था।"

"भाई, मैंने तुम्हें बड़ा कष्ट दिया। जान पड़ता है, तुम्हें बहुत भूख लगी है।" राजकुमार ने हँसकर कहा—"क्या मैं छोटा बच्चा हूं।"

हरिपद ने कहा—"मुझे यह बात मालूम है कि तुम दफ़्तर में कुछ भी नहीं खाते। घर जाकर ही शाम को भोजन करते

हो। अच्छा चलो, चायवाले की दुकान से कुछ लेकर खा लें।"

"इन सब बातों की आवश्यकता ही क्या है ?"

"मुझे तुमसे बहुत बातें करनी हैं। इसमें बहुत रात हो जायगी। तब तक बिना खाये तुम्हें बड़ा कष्ट होगा। चलो, कुछ खा लें। मेरे पास एक चवन्नी है।"

राजकुमार के नहीं-नहीं करने पर भी हरिपद उसे चाय-वाले की दुकान पर ले ही गये।

रास्ते में राजकुमार ने पूछा—"क्या बात है ? कुछ बताओ तो सही।"

"बहुत सी बातें हैं, भाई।"

"कुछ तो बताओ।"

"मेरी बहिन के विवाह के सम्बन्ध में।"

"कहीं कुछ ठीक कर लिया क्या ?"

"नहीं।"

राजकुमार इसके बाद कुछ न पूछ सका। वह चाय-वाले की दुकान में हरिपद के साथ जाकर बैठ गया। फिर दोनों एक-एक प्याला चाय और चार-चार बिसकुट खाकर गोलदिग्घी वापस आये।

सफलता

रात के आठ बजे का समय है। विद्यार्थियों की भीड़ बहुत हो गई है। फिर भी बैठने के लिए कोई बेञ्च खाली नहीं ाई देती। एक निर्जन स्थान पाकर दोनों मित्र घास ही पर गये।

हरिपद ने पूछा—"प्रभा को तुमने देखा है?"

"हाँ, देखा है।"

"कैसी है?"

राजकुमार ने हँसकर कहा—"अच्छी है।"

हरिपद ने कुछ देर चुप रहकर कहा—"तुम्हीं मेरा यह क्यों नहीं दूर करते?"

राजकुमार ने कहा—"मैं? क्या मैं उसके योग्य हूं?"

"क्यों, योग्य क्यों नहीं हो।"

"मेरे मां नहीं, बाप नहीं, घर नहीं, धन नहीं। केवल बीस ा महीना पाता हूं। अपने ही पेट को नहीं होता—'मुँह पेट ललाय' वाली कहावत सदा बनी रहती है। ऐसी में मुझसे विवाह होने पर तुम्हारी बहिन को क्या सुख ा?"

हरिपद ने कहा—"राजपुत्र मिले भी कहीं !"

राजकुमार ने कहा—"और थोड़े दिन तलाश करो, मिल ही जायगा।"

हरिपद यह उत्तर सुनकर राजकुमार के मुँह की ओर देखने लगा। ऐसा अभिमान ! यदि ऐसा ही हो तब तो बना-बनाया काम सब चौपट हो जायगा। वह बोला—"भाई, यह सब बातें अब रहने दो। मेरी अवस्था के लोगों को इससे अधिक आशा करना व्यर्थ है। लड़कों का बाजारभाव देखते ही हो। काना-खुतरा न होकर एक पढ़ा-लिखा वर पाना मेरे जैसे परिवार के लिए परम सौभाग्य की बात है। तुम पूछते हो, तुम्हारे साथ विवाह होने से प्रभा को क्या सुख मिलेगा? मेरा उत्तर है कि सोना-चांदी, घर-बार और दास-दासी प्रभृति सुखों के अतिरिक्त और सभी सुख होंगे। मेरे गांव के उस बूढ़े गिरीश के साथ—जिसके लड़के हम लोगों के बराबर हैं—विवाह होने से प्रभा को क्या सुख मिलेगा? इसमें संदेह नहीं कि रुपया-पैसा, गहना-कपड़ा और दास-दासी इत्यादि बातों की कमी कुछ भी न रहेगी; पर यही क्या स्त्रियों के एकमात्र सुख की सामग्री है? यदि स्त्री-पुरुष में प्रेम न हुआ तो क्या !"

राजकुमार ने कहा—"यह बात तो तुम ठीक कहते हो। किन्तु यह तो बताओ, यदि घर में अन्न न हुआ तो क्या प्रेम से पेट भर जायगा ?"

हरिपद ने कहा—"तुम्हारी अवस्था क्या सदा ऐसी ही रहेगी ?"

"भविष्य में क्या होगा, यह कौन कह सकता है ? जिस प्रकार उन्नति की सम्भावना रहती है वैसे ही अवनति भी हो सकती है।"

"यह बात तो ठीक है; किन्तु आशा और निराशा भी तो होती है। तुमने एफ० ए० तक पढ़ा-लिखा है। यद्यपि बीस रुपया मासिक तुम्हें जो मिलते हैं, बहुत थोड़े हैं, तथापि भविष्य में उन्नति की आशा ही ने तो तुम्हें रोक रक्खा है। यदि तुम मास्टरी कर लो और एक-दो लड़कों को, प्राइवेट ट्यूशन में, पढ़ाने लगो तो इस वेतन से तीन-चारगुना रुपया प्रति मास कमा सकते हो। तुम्हारे जैसे चरित्रवान, बुद्धिमान और परिश्रमी युवक की उन्नति अवश्य होगी। यह अवस्था बहुत दिनों तक कदापि नहीं रह सकती।"

राजकुमार ने पूछा—"मेरे विषय में ऐसी उच्च धारणा कब से उत्पन्न हुई ?"

हरिपद ने अब बात समझी। उसने कौतूहल भरे नेत्रों से राजकुमार की ओर देखकर कहा—"भाई, तुमसे पहले अनुरोध नहीं किया, क्या इसी लिए तुम खफ़ा हो ?"

राजकुमार ने कहा—"खफ़ा मैं क्यों और किस बिरते पर होऊंगा ?"

"मैंने तुम से पहले नहीं कहा, इसका कारण सुनो।

हम दहेज में एक पैसा भी नहीं दे सकते। तुमने परिश्रम से पढ़ना-लिखना सीखा है। ईश्वर की कृपा से नौकरी भी करते हो। उन्नति की भी आशा है। ऐसी दशा में विवाह की इच्छा करने पर तुम्हें मेरी वहिन से अधिक योग्य लड़कियां मिल सकती थीं। रूप-गुण में चाहे अच्छी न होतीं; परन्तु और सब बातों में अवश्य ही अच्छी मिलतीं। मेरी वहिन को जो स्वीकार करेगा उसे एक प्रकार से त्याग ही करना पड़ेगा। यह सोचकर मैं चाहता था कि जहां तक मुझे कोई दूसरा वर मिल जाय, मैं तुम्हारा नुकसान न करूं। अस्तु। इसी से मैंने पहले तुमसे कुछ नहीं कहा।"

ऐसी बातों पर मनुष्य प्रायः विश्वास नहीं करता; परन्तु जब प्रेम बीच में पड़कर बातों के मानने का अनुरोध करता है तो सहसा इस से भी वेतुकी बातों पर विश्वास करना ही पड़ता है। यही कारण है कि राजकुमार ने अनायास ही हरिपद की बातों पर विश्वास कर लिया।

हरिपद ने फिर कहना आरम्भ किया—"भाई, तुम्हारे साथ मेरी मित्रता कई वर्षों से है। अनेक अवसरों पर तुमने मेरी सहायता की है। इस वार भी मुझे इस दुःख से उवारो। मेरे माता-पिता उस बूढ़े के साथ वहिन का विवाह कर देने को जिस प्रकार राजी हुए हैं, वह लाचारी की बात है। तुमसे कुछ छिपा तो है ही नहीं, सब सुन चुके हो। इस बार मैंने घर जाकर देखा कि विवाह की चर्चा से ही प्रभा की कान्ति

बिलकुल जाती रही है। विवाह हो जाने पर तो उसका बचना मुश्किल है।. चार नहीं, छः नहीं, मेरे यही एक मात्र बहिन है। यदि उसे भी इस प्रकार दुःख से जीवन व्यतीत करना पड़ा, तब तो मेरा होना, न होना, दोनों बराबर हैं। अब तुम "नहीं" मत कहो।" इतना कहकर हरिपद ने राजकुमार के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये।

राजकुमार का हृदय भर आया। उसकी आंखों में जल दिखाई पड़ने लगा। यह जल क्यों दिखाई पड़ा, इसका कारण जानना बड़ा कठिन है।

राजकुमार इनकार न कर सका। उसने कहा—"अच्छा, यदि तुम ऐसा कहते हो और तुम्हारे माता-पिता राजी हैं, तो फिर मुझे स्वीकार है।"

इसके बाद दोनों मित्रों में बड़ी देर तक भविष्य की आलोचना होती रही। आगे चलकर क्या-क्या करना होगा। यह सब एक प्रकार से निश्चित हो गया। विवाह हो जाने पर प्रभा त्रिवेणी ही में रहेगी। आगामी वर्ष राजकुमार भी हरिपद के साथ बी० ए० की परीक्षा देगा। परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने पर दोनों कानून पढ़ेंगे। विकालत पास कर चुकने पर दोनों ही मित्र किसी जगह जाकर प्रैक्टिस आरम्भ करेंगे। पास ही पास मकान में रहेंगे। बीच की दीवार तोड़वा लेंगे, जिससे स्त्रियों को प्रत्येक समय सुभीता रहे। यदि मकानवाला कुछ आपत्ति करेगा तो उसके पास रुपया जमा करके कह देंगे

कि जब तुम्हारा मकान छोड़ दें, तब इसी रुपये से उसको फि
से ठीक करा लेना।

राजकुमार ने कहा—"हां, सो तो ठीक ही है। मकान त
एक न एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा। क्या सदैव किराये
मकान में थोड़े ही रहेंगे।"

हरिपद ने कहा—"बात तो ठीक कहते हो; किन्तु शुरू
कई साल ऐसा न कर सकोगे। देखते तो हो, आज-कल
नये वकीलों की क्या दशा है। बेचारों को घर का खर्च चला
मुश्किल हो जाता है। इतना अच्छा है कि हम दोनों
परिवार बहुत छोटा है। दोनों एक से हैं।"

"हां, हां, दोनों ही एक से हैं"—यह कहकर राजकुम
हँसने लगा। हरिपद भी हँस पड़ा। इस प्रकार दोनों
हँसने लगे। युवावस्था, तेरी बलिहारी है! तुझ में अपूर्व श
है। भविष्य की बातों की आलोचना दोनों कैसे मजे में कर
हैं। दुर्भाग्य की बात भी सोचते हुए हँसी आती है।

टन् टन् करके प्रेसीडेन्सी कालेज की घड़ी में नौ बजा
लाचार होकर दोनों मित्रों ने भविष्य की बातों का सोच
मुलतवी कर, इस समय क्या-क्या करना नितान्त आवश्यक
इस पर विचार करने लगे।

हरिपद ने कहा—"वैशाख सुदी दसमी इस महीने
आखिरी लग्न है।"

इसी दिन विवाह होना निश्चित हुआ। राजकुमार

पूछा—"दफ़्तर से कितने दिनों की छुट्टी लेनी पड़ेगी?"

"एक सप्ताह की।"

"एक सप्ताह की क्या आवश्यकता है? साहब इतने दिनों की छुट्टी देंगे भी नहीं। मेरी समझ में दो-तीन दिन काफ़ी होंगे।"

हरिपद ने चिन्तित होकर कहा—"दो दिन में तो सब काम होना असम्भव है। दसमी का विवाह है। नौमी की शाम को यहां से चलना पड़ेगा; क्योंकि सवेरे ही से स्त्रियों के सब झगड़े शुरू हो जाँयगे। विवाह हो जाने के बाद दो दिन और रस्मों में लगेंगे। जब सब खतम हो जायगा, उसके बाद भी तुम्हें दो दिन वहां और रहना पड़ेगा। मेरी समझ में कम से कम पांच दिन लगेंगे। इससे कम में तो ठीक न हो सकेगा। इससे तुम पांच दिन की छुट्टी लो।"

राजकुमार ने कहा—"अच्छा, कोशिश करूंगा; किन्तु यदि साहब न माने तो तीन ही दिन की छुट्टी ले लूंगा।"

हरिपद ने पूछा—"विवाह-सम्बन्धी किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ेगी और उनमें से कौन-कौन वहां मिल जायँगी और कौन-कौन यहां से खरीदने में सुविधा होगी?"

राजकुमार ने कहा—"भाई, मुझे क्या मालूम। तुम गांव चले जाओ और सब पूछकर तय कर लो।"

हरिपद ने कहा—"हां, घर तो मुझे कल जाना ही पड़ेगा।"

रात को दस बजे दोनों मित्र जुदा हुए।

कि जब तुम्हारा मकान छोड़ दें, तब इसी रुपये से उसको फिर से ठीक करा लेना।

राजकुमार ने कहा—"हां, सो तो ठीक ही है। मकान तो एक न एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा। क्या सदैव किराये के मकान में थोड़े ही रहेंगे।"

हरिपद ने कहा—"बात तो ठीक कहते हो; किन्तु शुरू में कई साल ऐसा न कर सकोगे। देखते तो हो, आज-कल के नये वकीलों की क्या दशा है। बेचारों को घर का खर्च चलाना मुश्किल हो जाता है। इतना अच्छा है कि हम दोनों का परिवार बहुत छोटा है। दोनों एक से हैं।"

"हां, हां, दोनों ही एक से हैं"—यह कहकर राजकुमार हँसने लगा। हरिपद भी हँस पड़ा। इस प्रकार दोनों हँसने लगे। युवावस्था, तेरी बलिहारी है! तुझ में अपूर्व शक्ति है। भविष्य की बातों की आलोचना दोनों कैसे मजे में कर रहे हैं। दुर्भाग्य की बात भी सोचते हुए हँसी आती है।

टन् टन् करके प्रेसीडेन्सी कालेज की घड़ी में नौ बजा। लाचार होकर दोनों मित्रों ने भविष्य की बातों का सोचना मुलतवी कर, इस समय क्या-क्या करना नितान्त आवश्यक है इस पर विचार करने लगे।

हरिपद ने [illegible] 'वैशाख सुदी दसमी इस महीने की आखिरी [illegible]

[illegible] हुआ। राजकुमार

पूछा—"दफ़र से कितने दिनों की छुट्टी लेनी पड़ेगी ?"

"एक सप्ताह की।"

"एक सप्ताह की क्या आवश्यकता है ? साहब इतने दिनों की छुट्टी देंगे भी नहीं। मेरी समझ में दो-तीन दिन काफ़ी होंगे।"

हरिपद ने चिन्तित होकर कहा—"दो दिन में तो सब काम होना असम्भव है। दसमी का विवाह है। नौमी की शाम को यहां से चलना पड़ेगा; क्योंकि सबेरे ही से स्त्रियों के सब झगड़े शुरू हो जाँयगे। विवाह हो जाने के बाद दो दिन और रस्मों में लगेंगे। जब सब खतम हो जायगा, उसके बाद भी तुम्हें दो दिन वहां और रहना पड़ेगा। मेरी समझ में कम से कम पांच दिन लगेंगे। इससे कम में तो ठीक न हो सकेगा। इससे तुम पांच दिन की छुट्टी लो।"

राजकुमार ने कहा—"अच्छा, कोशिश करूंगा; किन्तु यदि साहब न माने तो तीन ही दिन की छुट्टी ले लूंगा।"

हरिपद ने पूछा—"विवाह-सम्बन्धी किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ेगी और उनमें से कौन-कौन वहां मिल जायँगी और कौन-कौन यहां से खरीदने में सुविधा होगी ?"

राजकुमार ने कहा—"भाई, मुझे क्या मालूम। तुम गांव चले जाओ और सब पूछकर तय कर लो।"

हरिपद ने कहा—"हां, घर तो मुझे कल जाना ही पड़ेगा।"

रात को दस बजे दोनों मित्र जुदा हुए।

जवाब देंगे तो कुछ सन्देह भी होता। स्पष्ट तो लिखा है।"
यह कहकर गिरीश फिर कागज़ पढ़ने लगे:—

"बहुत से धनी-मानी देशी सम्भ्रान्त व्यक्तियों और उच्च-पदस्थ अंगरेज़ कर्मचारियों द्वारा प्रशंसित एवं सैकड़ों अयाचित प्रशंसापत्र प्राप्त।"

इससे प्रकट है कि स्वामीजी को रुपये-पैसे की आवश्यकता नहीं। दूसरे यह भी सुनने में आता है कि गृहस्थाश्रम त्याग करने के समय लाखों रुपया इन्होंने गरीबों को बाँट दिया था सवेरे सात से दस बजे तक और दिन के एक बजे से आठ बजे रात तक ज्योतिष से विचार, गणना, इत्यादि करते और औषधि, कवच तथा यंत्रादि देते हैं।

सतीश ने हुक्के में दो टान देकर कहा—"मैं यह कब कहता हूँ कि यह कोई धूर्त है। हाँ, हरेन्द्र जो कुछ कहता था वह बहुत आश्चर्यजनक था।"

हरेन्द्र त्रिवेणी का रहनेवाला एक युवक है। वह कलकत्ते गया था। वहीं से यह विज्ञापन लाया था। उसने खुद स्वामीजी को नहीं देखा; बल्कि लोगों से सुना था कि वह एक पहुँचे हुए साधु हैं। एक ऋणी आदमी देनदारों के तकाज़ों से घबड़ाकर अफीम खरीद लाया था। उसी समय इस विज्ञापन की एक प्रति उसके हाथ में पड़ी। दूसरे दिन उसने कालीघाट जाकर बाबा को अपना हाथ दिखलाया। बाबा ने उसका हाथ देखकर कहा—"इस

"क्यों, क्या हुआ ?"

सतीश ने कल्पना के सहारे कहना आरम्भ किया—"कल ही की तो बात है। आप से कहना भूल गया। कल दोपहर को प्रभा मेरे घर आकर मां से पूछने लगी, 'क्या कल वह कलकत्ते जा रहे हैं?' मां ने कहा—'हां, सतीश कहता था। वह भी तो साथ जायगा।' प्रभा ने पूछा—'क्यों मां, वह कलकत्ते क्यों जा रहे हैं, वहां कितने दिन रहेंगे?' मां, ने हँस कर जवाब दिया, 'चाहे जितने दिन रहें, विवाह के पहले ही आ जायँगे। इस बीच में वे चाहे जहां रहें, तेरा नुकसान ही क्या है!' प्रभा ने कहा—'जाओ, तुम तो प्रत्येक बात में हँसी करती रहती हो। अच्छा। पञ्चाङ्ग कहां है?' मां ने कहा—'क्या देखोगी? यह कि ज्येष्ठ वदी पञ्चमी को कितने दिन रह गये हैं?' प्रभा ने कहा,—'नहीं, कल दिन कैसा है, भरणी-भद्रा तो नहीं है?' मां ने पूछा—'यदि दिन अच्छा न हुआ तो क्या जाने न दोगी? और अगर जाने न दोगी तो कैसे मना कर सकोगी?' प्रभा बोली—'यदि दिन अच्छा न हुआ तो देवरजी से मना करवा दूंगी।' मां ने कहा......।"

गिरीश बाबू इतने ही में पूछ बैठे—"देवरजी कौन?"

सतीश ने कहा—"तिलक हो जाने के बाद मुझे देवर जी कहने लगी है। इसके पहले वह चाचा कहती थी। यदि वह ऐसा रिश्ता न जोड़ती तो किसी काम की आवश्य

पड़ने पर आशा कैसे दे सकती थी ? दिल की बात आप तक पहुँचाने का कुछ साधन तो होना चाहिए ! कैसा उसने उपाय सोच लिया ! इसीसे तो कहता हूं कि वह बड़ी होशियार है।"

गिरीश एक मिनट तक इस बात का आनन्द ले चुकने पर बोले—"फिर क्या बातें हुईं ?"

सतीश ने कहा—"मां बोली, 'अरे अभी से यह हुकूमत ! विवाह हो जाने पर तो.. ...'"

ठीक इसी समय भीषण शब्द करती हुई एक पैसेंजर ट्रेन त्रिवेणी की ओर चली गई। उसकी घड़घड़ाहट में सतीश की आवाज दब गई। गिरीश विरक्त होकर, आनन्द में बाधा देनेवाली, उस ट्रेन की ओर देखने लगे।

उसी ट्रेन के एक डिब्बे में विवाह का सब सामान साथ में रखे हुए राजकुमार तथा हरिपद परस्पर बातें करते-करते चले आ रहे थे।

ट्रेन के निकल जाने पर गिरीश ने पूछा—"हां, इसके बाद ?"

सतीश ने पूछा—"कहां तक कहा था ?"

"मां ने कहा, अभी से इतनी हुकूमत ! विवाह हो जाने पर तो......"

सतीश ने कहा—"हां, इसके बाद मां ने कहा कि 'विवाह हो जाने पर तो तुम गिरीश को किसी के पास भी न फटकने

के कारण श्रीरामचन्द्र की देह के स्पर्श का सुख भली भाँति नहीं पाती। मैं चाहती हूं कि सोलहो आने उनके शरीर का आलिङ्गन करूं; पर यह (माला) सौत बीच में पड़कर सारा मज़ा किरकिरा कर देती है। इससे इसे दूर ही कर देना चाहिए।"

समय हो जाने से गिरीश ने कोट से अफीम की डिबिया निकाली; और उसमें से एक मात्रा का सेवन कर गाड़ी की खिड़की के पास आ बैठे। आकाश में चन्द्रमा खिल रहा था; परन्तु गिरीश अपने दोनों नेत्रों को मूँदकर, आकाश में प्रभारूपी चन्द्र का आविर्भाव करते हुए, आनन्द भोगने लगे। इंजन की घड़घड़ाहट उन्हें इस प्रकार मालूम होने लगी मानो कोई ताल के साथ गा रहा है—

'वकुलमालिकयापि मया न सा,

तनुरभूपितदन्तरभीरुणा' इत्यादि।

राजा और मंत्री

भवानीपुर से दूसरे दिन सबेरे सात बजे से पहले ही दोनों साथी काली-दर्शन का बहाना कर स्वामी ज्ञानानन्द के दर्शनार्थ रवाना हुए। पूछते-पूछते थोड़ी देर में जेठमल सरजूमल की कोठी पर पहुँच गये।

कोठी के अहाते में प्रवेश करते ही एक संन्यासी से भेंट हुई। पूछने पर उसने अपने को स्वामीजी का चेला बतलाया और इन लोगों को साथ ले जाकर कोठी के एक कमरे में बिठला दिया। उसने कहा—"स्वामीजी पूजन कर रहे हैं। आध घण्टे बाद आसन से उठेंगे, तब दर्शन हो सकेंगे। तब तक बैठिए। तमाखू मँगवाता हूँ।" यह कहकर उक्त संन्यासी ने एक नौकर को तमाखू भर लाने का हुक्म दिया।

नौकर तमाखू भरने चला गया। संन्यासी गिरीश और सतीश से बातें करने लगा। आप लोग कहां के रहनेवाले हैं, क्या रोजगार करते हैं, कलकत्ते कैसे आना हुआ, कब तक रहना होगा, किसके कितने विवाह हुए हैं, कितने लड़के-बच्चे हैं, इत्यादि बातें बड़े ढङ्ग से पूछकर उसने जान ली। बीच-बीच में वह स्वामीजी की महिमा का भी बखान करता रहा। इतने ही में एक और दर्शन करनेवाले व्यक्ति आ गये।

के कारण श्रीकृष्णचन्द्र की देह के स्पर्श का सुख भली भांति भोग नहीं पाती। मैं चाहती हूं कि सोलहो आने उनके शरीर का आलिङ्गन करूं; पर यह (माला) सौत बीच में पड़कर सारा मजा किरकिरा कर देती है। इससे इसे दूर ही कर देना चाहिए।"

समय हो जाने से गिरीश ने कोट से अफीम की डिबिया निकाली; और उसमें से एक मात्रा का सेवन कर गाड़ी की खिड़की के पास आ बैठे। आकाश में चन्द्रमा खिल रहा था; परन्तु गिरीश अपने दोनों नेत्रों को मूँदकर, आकाश में प्रभारूपी चन्द्र का आविर्भाव करते हुए, आनन्द भोगने लगे। ट्रेन की घड़घड़ाहट उन्हें इस प्रकार मालूम होने लगी मानो कोई ताल के साथ गा रहा है—

'बकुलमालिकयापि मया न सा,
तनुरभूपितदन्तरभीरुणा' इत्यादि।

राजा और मंत्री

भवानीपुर से दूसरे दिन सबेरे सात बजे से पहले ही दोनों साथी काली-दर्शन का बहाना कर स्वामी ज्ञानानन्द के दर्शनार्थ रवाना हुए। पूछते-पूछते थोड़ी देर में जेठमल सरजूमल की कोठी पर पहुँच गये।

कोठी के अहाते में प्रवेश करते ही एक संन्यासी से भेट हुई। पूछने पर उसने अपने को स्वामीजी का चेला बतलाया और इन लोगों को साथ ले जाकर कोठी के एक कमरे में बिठला दिया। उसने कहा—"स्वामीजी पूजन कर रहे हैं। आध घण्टे बाद आसन से उठेंगे, तब दर्शन हो सकेंगे। तब तक बैठिए। तमाखू मँगवाता हूँ।" यह कहकर उक्त संन्यासी ने एक नौकर को तमाखू भर लाने का हुक्म दिया।

नौकर तमाखू भरने चला गया। संन्यासी गिरीश और सतीश से बातें करने लगा। आप लोग कहाँ के रहनेवाले हैं, क्या रोजगार करते हैं, कलकत्ते कैसे आना हुआ, कब तक रहना होगा, किसके कितने विवाह हुए हैं, कितने लड़के-बच्चे हैं, इत्यादि बातें बड़े ढङ्ग से पूछकर उसने जान लीं। बीच-बीच में वह स्वामीजी की महिमा का भी बखान करता रहा। इतने ही में एक और दर्शन करनेवाले व्यक्ति आ गये।

के कारण श्रीकृष्णचन्द्र की देह के स्पर्श का सुख भली भांति भोग नहीं पाती। मैं चाहती हूं कि सोलहो आने उनके शरीर का आलिङ्गन करूं; पर यह (माला) सौत बीच में पड़कर सारा मजा किरकिरा कर देती है। इससे इसे दूर ही कर देना चाहिए।"

समय हो जाने से गिरीश ने कोट से अफीम की डिबिया निकाली; और उसमें से एक मात्रा का सेवन कर गाड़ी की खिड़की के पास आ बैठे। आकाश में चन्द्रमा खिल रहा था; परन्तु गिरीश अपने दोनों नेत्रों को मूंदकर, आकाश में प्रभारूपी चन्द्र का आविर्भाव करते हुए, आनन्द भोगने लगे। ट्रेन की घड़घड़ाहट उन्हें इस प्रकार मालूम होने लगी माने। कोई ताल के साथ गा रहा है—

'बकुलमालिकयापि मया न सा,
तनुरभूपितदन्तरभीरुणा' इत्यादि।

राजा और मंत्री

भवानीपुर से दूसरे दिन सवेरे सात बजे से पहले ही दोनों साथी काली-दर्शन का बहाना कर स्वामी ज्ञानानन्द के दर्शनार्थ रवाना हुए। पूछते-पूछते थोड़ी देर में जेठमल सरजूमल की कोठी पर पहुँच गये।

कोठी के अहाते में प्रवेश करते ही एक संन्यासी से भेंट हुई। पूछने पर उसने अपने को स्वामीजी का चेला बतलाया और इन लोगों को साथ ले जाकर कोठी के एक कमरे में बिठला दिया। उसने कहा—"स्वामीजी पूजन कर रहे हैं। आध घण्टे बाद आसन से उठेंगे, तब दर्शन हो सकेंगे। तब तक बैठिए। तमाखू मँगवाता हूँ।" यह कहकर उक्त संन्यासी ने एक नौकर को तमाखू भर लाने का हुक्म दिया।

नौकर तमाखू भरने चला गया। संन्यासी गिरीश और सतीश से बातें करने लगा। आप लोग कहाँ के रहनेवाले हैं, क्या रोजगार करते हैं, कलकत्ते कैसे आना हुआ, कब तक रहना होगा, किसके कितने विवाह हुए हैं, कितने लड़के-बच्चे हैं, इत्यादि बातें बड़े ढङ्ग से पूछकर उसने जान लीं। बीच-बीच में वह स्वामीजी की महिमा का भी बखान करता रहा। इतने ही में एक और दर्शन करनेवाले व्यक्ति आ गये।

आध घण्टा बीत जाने के बाद बगल के कमरे में खड़ाऊं का शब्द सुनाई पड़ा। संन्यासी ने कहा, "जान पड़ता है, स्वामीजी पूजा कर चुके। जरा देखूं तो सही" यह कहकर वह चला गया।

दो मिनट बाद लौटकर संन्यासी ने कहा—"आप लोग आइए।"

संन्यासी के साथ दोनों—गिरीश और सतीश—ने जाकर देखा कि मृगचर्म पर एक व्यक्ति, जिसकी अवस्था लगभग चालीस वर्ष की होगी, गेरुआ वस्त्र पहिने बैठा है। दोनों ही ने बड़ी भक्ति से उसे प्रणाम किया। स्वामीजी ने आशीर्वाद देकर उन्हें अपने पास एक कम्बल पर बैठने को कहा।

कुशल-प्रश्न पूछने के बाद स्वामीजी ने पूछा—"बच्चा, तुम लोगों के आने का क्या अभिप्राय है?"

गिरीश ने हाथ जोड़कर कहा—"मैंने सुना, आप एक सिद्ध पुरुष हैं। आपकी प्रशंसा सुनकर दर्शन करने के अभिप्राय से आया हूं। यह भी मालूम हुआ है कि आप सामुद्रिक शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं। हाथ की रेखाओं को देखकर जीवन के शुभाशुभ का निरूपण करते हैं।"

स्वामीजी ने कहा—"हां-हां, जरा पास आकर अपना हाथ दिखलाओ तो।"

गिरीश ने नजदीक जाकर अपना दाहना हाथ आगे बढ़ा दिया। स्वामीजी ने कुछ देर तक हाथ को बड़े ध्यानपूर्वक

देखने के बाद एक बार गिरीश के मुँह की ओर देखा। फिर कहा—"बच्चा, साधुओं से तो छल न किया करो!"

यह सुनकर गिरीश और सतीश—दोनों ही—चकित होगये। गिरीश ने पूछा—"स्वामीजी मैंने क्या छल किया?"

स्वामीजी ने कहा—"यह छद्मवेष क्यों बनाया?"

गिरीश ने पूछा—"छद्मवेष कैसा?"

"छद्मवेष नहीं तो क्या यही तुम्हारा राजवेष है? तुम तो राजा हो; और जान पड़ता है यह (सतीश की ओर देखते हुए) तुम्हारे मंत्री हैं। तुम्हारे हाथ में राजसी चिन्ह हैं। लाओ हाथ जरा एक बार फिर देख लूं, कहीं गलती तो नहीं की!"

गिरीश का शरीर रोमाञ्चित हो उठा। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण का यह श्लोक—स च राजा भवेद् ध्रुवम्—याद हो आया।

स्वामीजी ने इस बार हाथ को बड़ी देर तक देखने के बाद पूछा—"तुम्हारी उम्र कितनी है?"

गिरीश ने बतलाया—"अड़तालिस वर्ष।"

स्वामीजी ने कहा—"ओहो! ठीक कहते हो। मैंने तुम्हारी सूरत देखकर पचास वर्ष समझ लिया था। तुम्हें पचास वर्ष होने के पूर्व ही राजा होना चाहिए; किन्तु बीच में एक अरिष्ट ग्रह आ जाने से अब तक वैसा न हो सका। विधान करने से सब ठीक हो जायगा।"

गिरीश ने गद्गद् होकर कहा—"प्रभो, मैं तो साधारण मनुष्य हूं। राजा कैसे हो जाऊंगा?"

स्वामीजी ने बतलाया—"स्त्री के भाग्य से।"

"महाराज, मेरी स्त्री का तो देहान्त हो गया।"

स्वामीजी ने गिरीश का हाथ देखते हुए कहा—"दो स्त्रियाँ मर चुकी हैं, तीसरी के भाग्य से।"

स्वामीजी का चेला पास ही खड़ा था। यह बात सुनते ही उसके मुँह पर मुस्कराहट आ गई।

गिरीश ने काँपते हुए स्वर से कहा—"अभी तो तीसरा विवाह हुआ ही नहीं।"

"विवाह करो–करो, करो।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य"–इतना कहकर गिरीश ने स्वामीजी के चरण की रज लेकर अपने सिर में लगाई।

इसके बाद स्वामीजी ने दूसरी तरह की बातें छेड़ दीं। अपने देश-विदेश घूमने की बातें, साधु-महात्माओं की अलौकिक क्षमता की बातें, बतलाईं। इसी बीच में उन्होंने यह भी कहा कि वह श्रीबद्रीनारायण की राह में एक धर्मशाला बनवा रहे हैं। वहाँ एक डाक्टर भी रहेगा। कार्य प्रायः समाप्त हो चुका है। पचास हजार रुपये का अनुमान था। भक्तों ने सैंतालिस हज़ार इकट्ठा कर दिया है। अब सिर्फ तीन हजार रुपये की कमी रह गई है। "सात-पांच की लाकड़ी, एक जने का बोझ"—कुछ-कुछ कर देने से हो जायगा। आज पुरी धाम जाना चाहते थे; पर न जा सके। जब तक इतना रुपया इकट्ठा न हो जायगा, यहाँ रुक गये हैं।

इस समय अधिक व्यतीत होते देख गिरीश उठे। दण्डवत् करके ज्योंही उन्होंने सिर उठाया कि उन्हें स्वामीजी का वही चेला हाथ में एक बही लिये खड़ा दिखाई पड़ा। वही को सामने बढ़ाकर उसने कहा—"बाबू, धर्मशाले के लिए आप कुछ चन्दा देंगे?"

गिरीश ने बही लेकर देखा। उसमें अङ्गरेज़ी, बंगला, हिन्दी, आदि भाषाओं में बहुत लोगों के हस्ताक्षर थे। किसी ने दस रुपये, किसी ने बीस, किसी ने पचास रुपया चंदा लिखा था। गिरीश ने थोड़ी देर सोचने के बाद जेब से दस रुपये का नोट निकालकर संन्यासी को दिया; और बही में हस्ताक्षर भी कर दिया। संन्यासी ने बही सतीश की ओर बढ़ाई। सतीश ने कहा—"बाबाजी, इस समय तो मेरे पास कुछ नहीं है।"

'अच्छा मैं देता हूं'—कहकर गिरीश ने दो रुपये जेब से निकालकर सतीश को दिये। सतीश ने बही में हस्ताक्षर करके बही दोनों रुपये चेलाजी के हवाले किये।

दोनों ने स्वामीजी को फिर प्रणाम करते हुए विदा ली।

इन दोनों के चले जाने के बाद स्वामीजी ने चेला से पूछा—"और कोई आया है?"

चेला ने कहा—"दो मनुष्य और हैं।"

"एक ही जगह के?"

"नहीं, एक परोहर का रहनेवाला है। कम उम्र है।

उसके बाप है, माँ नहीं है—सौतेली माँ है। अधिक कष्ट से परेशान मालूम देता है।"

स्वामीजी ने पूछा—"उसे किसी बड़ी नौकरी का प्रलोभन देना होगा अथवा लाटरी का ? बोलो, क्या कहते हो ?"

चेला ने कहा—"नौकरी ही ठीक रहेगी। दूसरा आदमी चालीस वर्ष का होगा। अपने घर से खुश जान पड़ता है।"

"क्या उसे भी राजा बनाना होगा ? राजाओं से तो देश भर दिया ! उसके स्त्री है या नहीं ?"

"स्त्री तो है। उसका एक लड़का मर गया है। बर्दवान जिले का रहनेवाला है। हाई-कोर्ट में मुकदमा चल रहा है।"

"अच्छा, उसी को पहले लाओ।"

गिरीश ने बाहर निकलकर पूछा—"सतीश, स्वामीजी कैसे हैं ?"

सतीश के मन में स्वामीजी के सम्बन्ध में सन्देह नहीं हुआ, यह तो नहीं कहा जा सकता। हाँ, उसने देखा कि उन पर गिरीश की श्रद्धा हो गई है। अतएव उसने मन का भाव छिपाते हुए कहा—"क्या कहना है। निःसन्देह महात्मा ही हैं।"

गिरीश ने कहा—"मेरा भी ऐसा ही विश्वास है।"

सतीश ने कहा—"पहले तो मुझे सन्देह था; किन्तु जब उन्होंने मुझे आपका मंत्री बतलाया तब से मेरे मन में श्रद्धा हो गई।"

गिरीश ने यह बात सुनते ही बराण्डे में आकर पूछा—"किसका विवाह हो रहा है?"

"प्रभा का।"

"क्या कहा! बाबूपाड़े के जगदीश की कन्या प्रभा का विवाह होता है! किसके साथ? तुझसे किसने कहा?"

"मैं स्वयं ही देख आई हूं।"

"क्या देख आई है?"

"यही कि उनके घर में खूब रोशनी हो रही है। शहनाई बज रही है। वर भी आ गया है।"

गिरीश ने रुँधे स्वर से कहा—"सुना, बुआजी!"

बुआजी ने धीरे से डरते हुए कहा—"हां बेटा, पहले तो कुछ मालूम न था। आज तीसरे पहर सुना कि कलकत्ते से वर आ गया है।"

गिरीश ने गरजकर कहा—"अभी तक क्यों नहीं बतलाया?"

बुआजी ने विचलित होकर कहा—"मैंने सोचा था कि तुम सन्ध्योपासन और भोजन इत्यादि से निपट लो, तब कहूं। खैर, अब उसके पीछे परेशान न हो। उसे जाने दो। क्या हमें अब दूसरी लड़की न मिलेगी? तुम अपना चित्त दुखी मत......"

बुआजी की बात समाप्त भी न होने पाई कि गिरीश बाबू

उनका पूजन अथवा दर्शन करना हम लोगों का प्रथम कर्तव्य है। देखिए न, पूजा का बहाना करके यहां तक आने का ते यह फल—शुभ संवाद—सुनने का मिला। पूजा करने से तो जाने क्या होगा।"

"न च दैवात् परं बलम्—देवताओं के बल के स... दूसरा कोई बल नहीं। बस, चलो। पूजा करके माता के प्रसन्न करें।"

"अच्छा, चलो।"

गंगा-स्नान और माता कालीजी का दर्शन कर जब वे दोनों साथी डेरे पर पहुँचे तब दोपहर हो चुकी थी।

दूसरे दिन वैशाख सुदी दसमी थी। कलकत्ते से कपड़ा और अन्य आवश्यक चीज़ें खरीदकर दोनों शाम की गाड़ी से त्रिवेणी को रवाना हुए।

घर पहुँचने पर रात के नौ बज चुके थे। गिरीश हाथ-मुँह धोकर सन्ध्योपासन करने के लिए आसन पर बैठे ही थे कि पड़ोस की एक स्त्री ने आकर बुआजी से कहा—मैंने ... सुना था कि बाबूपाड़े के जगदीश की कन्या के साथ गिरी... बाबू का विवाह होगा ?"

बुआजी ने कहा—"हां।"

स्त्री ने कहा—"वहां तो आज विवाह हो रहा है!"

"किसका विवाह हो रहा है ?"

"प्रभा का!"

तेरी लड़की विधवा हो जायगी !" इतना कहकर उन्होंने अपना यज्ञोपवीत तोड़ डाला।

क्रोध से कांपते हुए बकते-झकते गिरीश वहीं मूर्छित होकर कटे पेड़ की तरह गिर पड़े। उनका पैर लगने से यज्ञ-मण्डप का दीपक गिरकर बुझ गया।

सतीशदत्त वहीं खड़ा था। दो-तीन आदमियों की सहायता से गिरीश को वह अपने घर उठा ले गया और उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लगा।

फुटकर बातें

जगदीश ने जब राजकुमार के साथ अपनी कन्या प्रभा का विवाह करना निश्चय किया, तब भी वह जानते थे कि यह काम अच्छा नहीं है—किसी को वचन देकर पलट जाना शिष्टता से बाहर की बात है। गिरीश इससे बुरा मान जायँगे। परन्तु इन्हें यह स्वप्न में भी ध्यान न था कि मामला यहां तक बढ़ जायगा। उन्होंने सोचा था कि विवाह हो जाने के बाद किसी दिन गिरीश से जाकर कह देंगे कि "क्या करूं भाई, घर में किसी की भी सलाह न थी। लड़का (हरिपद) अब सयाना हुआ। तुम्हीं बताओ, उसकी बात कैसे टाल सकता था।

पैरों की खड़ाऊं को वहीं छोड़ नंगे पैर, नंगे वदन, वाह
चले गये।

गांव के अँधेरे रास्ते में पत्थर के रोड़े और कांटों के लग
की कुछ भी परवा न करते हुए गिरीश वावू वेतहाशा च
जा रहे हैं। एक पथिक रास्ते में आ रहा था। वेचारा उनक
टक्कर से गिर पड़ा; परन्तु उसकी ओर देखा भी नहीं। ए
जगह कीचड़ में पैर पड़ गया; परन्तु इन्हें मालूम भी न
हुआ। पागलों की तरह भागते हुए गिरीश महाशय किस
प्रकार जगदीश के मकान के पास पहुँचे।

बाहर-भीतर खूब रोशनी हो रही थी। आंगन में मण्ड
बना हुआ था। दस-बीस भले आदमी बैठे थे। बीच में मौ
धारण किये वर और लाल वस्त्र पहिने हुए कन्या बैठी थी
पुरोहितजी कन्या के पिता से मंत्रोच्चारण करा रहे थे। इस
समय गिरीश एकदम भीतर घुसते हुए जा पहुँचे। मंडप
पास पहुँचते ही मन्त्र-पाठ बन्द हो गया। जगदीश का मुँ
पीला पड़ गया। बैठे हुए लोग घवड़ाकर उठ खड़े हुए।

गिरीश ने गला फाड़कर कहा—"जगदीश, यह क्या?"

जगदीश भौंचक्के से होकर गिरीश की ओर देखने लगे।

गिरीश ने अपना यज्ञोपवीत पकड़कर ज़ोर से कहा—
"ब्राह्मण को वचन देकर उससे विमुख होना! क्यों? जाओ
तुम्हारा नाश हो, नाश हो, नाश हो! मैं यदि ब्राह्मण हूं तो ज
श्राप तुझे दे रहा हूं, सत्य होगा! देखना, वर्ष भर के भीतर ह

तेरी लड़की विधवा हो जायगी !" इतना कहकर उन्होंने अपना यज्ञोपवीत तोड़ डाला।

क्रोध से काँपते हुए बकते-झकते गिरीश वहीं मूर्छित होकर कटे पेड़ की तरह गिर पड़े। उनका पैर लगने से यज्ञ-मण्डप का दीपक गिरकर बुझ गया।

सतीशचन्द्र वहाँ खड़ा था। दो-तीन आदमियों की सहायता से गिरीश को वह अपने घर उठा ले गया और उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लगा।

फुटकर बातें

जगदीश ने जब राजकुमार के साथ अपनी कन्या प्रभा का विवाह करना निश्चय किया, तब भी वह जानते थे कि यह काम अच्छा नहीं है—किसी को वचन देकर पलट जाना शिष्टता से बाहर की बात है। गिरीश इससे बुरा मान जायँगे। परन्तु उन्हें यह स्वप्न में भी ध्यान न था कि मामला यहाँ तक बढ़ जायगा। उन्होंने सोचा था कि विवाह हो जाने के बाद किसी दिन गिरीश से जाकर कह देंगे कि "क्या करूँ भाई, घर में किसी की भी सलाह न थी। लड़का (हरिपद) अब सयाना हुआ। तुम्हीं बताओ, उसकी बात कैसे टाल सकता था।

इसके सिवा प्रभा भी रूप-गुण में तुम्हारे योग्य न थी। तुम्हें विवाह के लिए लड़कियों की कमी ही क्या है? हो सका तो मैं स्वयं ही तुम्हारे उपयुक्त कोई सयानी लड़की—जो प्रभा से सब बातों में श्रेष्ठ होगी—जल्द ढूँढ़ दूंगा।"

सोचा था, इसी तरह थोड़ी सा अनुनय-विनय करने पर सब काम ठीक हो जायगा। तिलक हो जाने के बाद न जाने कितने सम्बन्ध छूट जाते हैं; पर उनमें से कोई भी इस प्रकार सभा-मण्डप में जाकर, यज्ञोपवीत को तोड़ते हुए, शाप देकर मूर्छित नहीं हो जाता।

किन्तु जैसी घटना होगई, उससे जगदीश बड़ी चिन्ता में फँस गये। पहली बात ब्रह्मशाप की है। इसमें सन्देह नहीं कि इस घोर कलियुग में ब्राह्मणों का तेज पूर्ववत् नहीं रहा—न तो कोई आशीर्वाद से राजा होता है; और न शाप से मरता ही है। परन्तु जो कुछ हुआ, बहुत ही भद्दा कार्य हुआ। इस शोचनीय घटना से उनके चित्त में दुःख के साथ ही साथ भांति-भांति की शंकायें भी उठने लगीं।

चिन्ता का दूसरा कारण यह था कि जगदीश ऋणी और गिरीश उनके महाजन थे। यदि गिरीश अपने रुपयों की नालिश कर दें तो जगदीश को कहीं पैर रखने का भी स्थान दिखाई नहीं देता था। घर-बार सभी बिक जाने की सम्भावना थी। यह चिन्ता ब्रह्मशाप से भी अधिक दुखदायी थी।

जैसे-तैसे विवाह उस रात को हो गया। लगभग दो बजे खबर मिली कि गिरीश की मूर्छा जाती रही। अब वह होश में हैं; और सतीश के घर से पालकी पर अपने घर जाने की तैयारी कर रहे हैं।

अगले दो दिनों में विवाह की बाकी रस्में भी समाप्त हो गईं। सुनने में आता है कि गिरीश अभी तक चारपाई पर पड़े हैं। डाक्टर रोज उन्हें देखने आता है।

राजकुमार और हरिपद कलकत्ते चले गये। इधर डाक्टर की सलाह से गिरीश को दारजिलिङ्ग ले जाने की तैयारी हो रही है।

गिरीश के दारजिलिङ्ग चले जाने के बाद जगदीश की चिन्ता कुछ कम हुई। उन्होंने सुना, कि वहां ये लगभग एक मास रहेंगे। गिरीश के साथ सतीश, एक रसोई बनानेवाला तथा एक कहार गया है। घर में केवल बुआजी और दूसरे नौकर रह गये हैं। जगदीश सोचने लगे, क्या वास्तव में गिरीश एक ही मास में वापस आ जायँगे। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यदि स्थान अच्छा लगा और स्वास्थ्य में उन्नति हुई—जो अवश्य होगी—तो एक के बजाय दो महीने लग जायँगे। तब तक क्रोध भी शान्त हो जायगा। किसी ने कहा है कि ब्राह्मण का क्रोध और फूस की आग, दोनों बराबर हैं। लगते देर नहीं होती और बुझते भी देर नहीं होती। ऐसी ही चिन्ताओं में बेचारे जगदीश के दिन कटने लगे।

एक सप्ताह के बाद कलकत्ते से हरिपद ने लिखा—"आगामी शनिवार से मेरा कालेज बन्द हो जायगा। गर्मी की छुट्टियां आरम्भ हो जायँगी। उसी दिन की रातवाली गाड़ी से मैं घर आऊँगा। कहिए तो साथ में राजकुमार को लेता आऊँ। मेरे पास रेल के किराये के लिए रुपये हैं।"

पत्र पाकर जगदीश ने स्त्री से राय ली। स्त्री ने कहा—"यह पहला अवसर है। दामाद को जरूर बुलाना चाहिए। हरिपद को लिख दो, वह अपने साथ राजकुमार को लेता आवे।"

दूसरे शनिवार को हरिपद राजकुमार को साथ लेकर घर आया। दामाद के आने पर घर में जितनी धूमधाम होती है उतनी यहां कुछ नहीं हुई। वेचारा गरीब श्वसुर कर ही क्या सकता था? दूसरे दिन रविवार था। महल्ले के युवकों ने आकर मिठाई खिलाने के लिए राजकुमार को तंग करना शुरू किया। परन्तु वह वेचारा चुपचाप सुनता रहा। निर्धन आदमी को जी मसोसकर रह जाने के सिवा और दूसरा उपाय ही क्या है?

सोमवार के प्रातःकाल उठकर हाथ-मुँह धो चुकने के बाद कुछ जलपान कर के दामाद साहब मगरा स्टेशन की ओर रवाना हुए। चलते समय हरिपद ने कहा—"भाई, डेढ़ महीने की इन छुट्टियों में यहां अकेले बैठे-बैठे जी घबड़ा जायगा। प्रति शनिवार को तुम आ जाया करना।" अधिक

रहने की आवश्यकता नहीं पड़ी। राजकुमार राजी हो गया।

प्रति शनिवार को राजकुमार आता और सोमवार को चला जाता था। पड़ोस की स्त्रियाँ प्रभा से राजकुमार की चर्चा कर दिल्लगी करती थीं। उनकी मीठी चुटकियों से प्रभा की आँखें संकोचवश नीची हो जातीं और कपोल लज्जा से लाल हो जाते थे। एकांत में हमजोली की सखियों से मिलने पर जब छेड़-छाड़ होती तब वह भी हँसकर अपनी प्रसन्नता जाहिर कर देती थी। इसी प्रकार दिन बीतने लगे।

राजकुमार की समस्या

सावन का महीना है। रात के आठ बज चुके हैं। वर्षा बराबर हो रही है। बीच-बीच में बिजली चमक उठती है। आकाश में चारो ओर मेघ ही मेघ दिखाई पड़ते हैं। पटलडांगा नामक मुहल्ले के एक छोटे से कमरे में एक काठ की दीवट पर मिट्टी का चिराग़ टिमटिमा रहा है। बाहर से हवा आकर कभी-कभी उसकी क्षीण ज्योति को कँपा देती है। इस कमरे में दो आदमी रहते हैं। फर्श पर उनकी चटाइयाँ बिछी हुई हैं। एक पर हम लोगों के नवविवाहित राजकुमार अपने गाल पर हाथ रखे हुए बैठे कुछ सोच रहे हैं, दूसरी चटाई पर दो-तीन

किताबें रखी हुई हैं। पढ़नेवाला दिखाई नहीं पड़ता। वह आदमी कोई दूसरा नहीं, राजकुमार का साला हरिपद है। इस समय वह लड़कों को पढ़ाने गया है। इसीसे राजकुमार अकेला है। इस मेघाच्छन्न सन्ध्या के समय इस नवयुवक को छोड़कर भला और किसको इतनी चिन्ता हो सकती है!

कमरे के आले में एक वर्मा-टाइमपीस रखी टिक-टिक कर रही है। राजकुमार कभी तो उस घड़ी की ओर देखने लगता है और कभी बिस्तरे के नीचे से एक पत्र निकालकर चिराग की रोशनी में पढ़ने लगता है।

पाठको, कदाचित् आपने इस पत्र को कोई प्रेमपत्र समझा हो; किन्तु इसका काग़ज़ न तो रङ्गीन है और न इसमें कोई कविता ही लिखी दिखाई पड़ती है। पत्र अङ्गरेजी में लिखा हुआ है और आकार-प्रकार से किसी सरकारी दफ़्र का सा मालूम देता है।

शाम को सात बजे से साढ़े आठ बजे तक हरिपद लड़कों को पढ़ाने जाता है। पौने नौ बजे वह घर पर आकर भोजन करने के बाद स्वयं पढ़ने बैठता है; और बारह बजे रात तक पढ़ता है। सवेरे छः बजे से सात बजे तक फिर अपना पाठ याद कर दो घन्टे के लिए लड़कों को पढ़ाने जाता है और लौटकर अपने पढ़ने में लग जाता है। हरिपद का समय यों ही व्यतीत होता है।

धीरे-धीरे घड़ी ने साढ़े आठ बजा दिये। हरिपद के आने

में अब देर नहीं है। कुछ ही मिनटों के बाद ज़ीने पर उसके थके हुए पैरों का शब्द सुनाई पड़ा। जूता और छाता बाहर ही रख उसने कमरे में आकर राजकुमार से पूछा—"अकेले बैठे क्या सोच रहे हो?" इतना कहकर उसने अपनी कमीज़ और चदरा खूँटी पर टांग दिया। पैरों में स्लीपर पहनकर उसने दासी से एक लोटा पानी लाने को कहा। फिर बाहर जाकर एक बड़ी छुरी से जूते की मिट्टी छुड़ाने लगा। उस बेचारे के पास यही एक जोड़ा जूता है। कल इसी को पहनकर फिर उसे लड़के पढ़ाने जाना पड़ेगा।

जूते की मिट्टी साफ करते हुए हरिपद ने अपने बहनोई की ओर देखा। उसका बदला हुआ रङ्ग देखकर हरिपद ने पूछा—"क्यों राजू, क्या बात है? तुम उदास क्यों हो?" राजकुमार ने कहा, "इधर आओ तो बताऊं। मैं तो एक बड़े ही असमंजस में पड़ गया हूं।"

क्या मामला है, यह हरिपद कुछ भी न समझ सका। जूता छोड़, हाथ धोकर, वह राजकुमार के पास आकर बैठ गया। राजकुमार ने कहा—"शुरू से कहूं, तभी समझ सकोगे। दो महीने हुए होंगे, मैंने एक विज्ञापन देखा था कि चन्द्रगढ़ राज्य में एक हेड क्लर्क की आवश्यकता है। बिना किसी से कुछ कहे-सुने मैंने वहां एक दरख्वास्त भेज दी। उसके बाद......।"

हरिपद बीच ही में बोल उठा—"दरख्वास्त मंजूर हो गई!"

राजकुमार ने कहा—"हाँ, हाँ, घबड़ाते क्यों हो? सुनो, मैं कहता तो हूँ।"

हरिपद ने अधीर होकर फिर पूछा—"वेतन कितना है?"

"तीस रुपये।"

"इस नौकरी का वेतन तीस रुपये! बड़ा विचित्र हाल है!" यह कहकर वह भौंचक्का सा होगया।

राजकुमार ने कहा—"वेतन कम होने से क्या होता है। वहां बहुत सी सुविधायें हैं।"

हरिपद ने कहा—"क्या सुविधायें हैं? ऊपर की आमदनी? क्या तुम भी......?"

राजकुमार ने बीच ही में रोककर कहा—"नहीं भाई, ऊपर की आमदनी की बात नहीं कहता। रहने के लिए मकान मिलेगा। इससे किराये की बचत होगी। खाने को भोजन भी दरबार की ओर से मिलेगा।"

हरिपद ने उत्सुकता से पूछा—'क्या सच कहते हो! देखूं, चिट्ठी कहां है?'

तकिये के नीचे से चिट्ठी निकालकर राजकुमार ने अपने साले के हाथ में दी। उसमें लिखा था—"वेतन तीस रुपये मासिक, मकान तथा भोजन दरबार की ओर से मुफ़ मिलेगा।"

इसे पढ़कर हरिपद ने पूछा—"भोजन में क्या-क्या चीजें मिलेंगी? कुछ जानते हो?"

राजकुमार ने जवाब दिया—"वहां क्या मिलता है, सो तो मैं

हीं जानता। परन्तु मेरे दफ़्तर में एक बाबू काम करते हैं। उनके चाचा पश्चिम की किसी रियासत में नौकर हैं। वहां भी भोजन ...ने मिलने का नियम है। वह बतलाते हैं, वहां प्रतिदिन इतना खाने को मिलता है कि घर के लोगों और नौकरों ...े खाये भी नहीं चुकता। कुछ न कुछ रोज फेंकना ही पड़ता है।"

हरिपद ने कहा—"फिर क्या, इसे तुम स्वीकार कर लो।"

राजकुमार ने धीरे से पूछा—"तुम्हारी राय है?"

"हां, मेरी राय है। तुम यह नौकरी अवश्य स्वीकार कर ...। क्या तुम्हारी इच्छा नहीं है जो यह कहते थे कि मैं बड़े असमंजस में पड़ गया हूं? इसमें असमंजस की कौन सी बात ...? यह तो उत्तम कार्य है। अच्छा, यह तो बतलाओ, चन्द्रगढ़ कहां?"

"आरा ज़िले के बक्सर सब-डिवीज़न में चन्द्रगढ़ है। बक्सर से बैलगाड़ी में जाना होता है। बक्सर से लगभग बीस मील दूर होगा।"

हरिपद ने भौं सिकोड़ते हुए कहा—"यही ज़रा खटकने-वाली बात है।"

राजकुमार ने कहा—"मुझे इसकी चिन्ता नहीं है।"

हरिपद ने पूछा—"फिर?"

राजकुमार ने कहा—"जो सोचा था, वह कुछ न हो सकेगा। न तो बी० ए० ही पास कर सकूंगा, न वकील हो

सकूंगा। सारी जिन्दगी नौकरी ही में वितानी पड़ेगी।"

हरिपद ने कुछ सोचकर कहा—'हां, कहते तो ठीक हो।"

राजकुमार को जरा सहारा मिला। वह दृढ़ता से क
लगा—"हम लोगों को यह नौकरी अभी लाभदायक ज
मालूम होती है; किन्तु भविष्य भी सोचना चाहिए। नौक
करके कभी कोई बड़ा आदमी हुआ है?"

हरिपद ने कहा—"क्यों, हमेशा तुम्हें क्लर्क का काम थो
ही करना पड़ेगा। रियासतों में न जाने कितने बंगालियों
कम वेतन से काम शुरू किया; और अंत में वह मंत्री, दीवा
आदि तक हो गये।"

राजकुमार ने कहा—"सब का भाग्य एकसा नहीं होता।
उन्नति तो दूर रही, यदि जरा भी खुशामद से चूके कि बस
नौकरी से भी हाथ धो बैठे। वहां रहकर राजा साहब के नाे
तक की खुशामद करनी पड़ती है। अन्यथा उसने जहां जाकर
राजा साहब के कान में दो-चार उल्टी-सीधी बातें भरीं कि
फिर टिकना मुश्किल हुआ। फौरन बोरिया-बँधना बांधकर
भागना पड़ता है। तुमने माइकेल के बारे में क्या नहीं सुना

हरिपद ने पूछा—"माइकेल के बारे में क्या हुआ?"

राजकुमार ने जवाब दिया—"माइकेल मधुसूदन दत्त कु
दिनों तक पंचकोट राज्य के मैनेजर थे। उन्होंने "पंचकोटर
..." शीर्षक राज्य के सम्बन्ध में कविता तक लिख डाल
। उनकी नौकरी छूटने का कारण जानते हो?"

"नहीं, मैं तो नहीं जानता।"

"जानोगे कहाँ से! किसी जीवनचरित्र में इसका वर्णन [होत]ा तो जानते भी। माइकेल जब मैनेजर हुए तब उन्होंने [देख]ा कि राज्य के कर्मचारियों में घूसखोरी का प्रचार अधिक [है]। जिसको जैसे मिलता है, घूस लेने से नहीं चूकता। [मा]इकेल ने इस बुरी प्रथा का अंत करने के लिए कड़े से कड़े [उ]पायों का अवलम्ब किया। कर्मचारी बहुत घबड़ाये। सोचने [ल]गे, कहाँ का शैतान आया। माइकेल से अपना पीछा [छु]ड़ाने के लिए तरह-तरह के षड्यंत्र करने लगे। सोचते-सोचते [ए]क दिन मौका पाकर किसी कर्मचारी ने राजा से कहा— [ह]ुजूर, मैनेजर साहब में सब बातें तो अच्छी हैं; परन्तु उनकी [ए]क बात पर हम लोगों को बड़ा आश्चर्य है। केवल आश्चर्य [ह]ी नहीं; किन्तु क्रोध और दुःख भी होता है। वह कहते हैं, श्री-[म]ान् के शरीर से दुर्गन्ध आती है।"

राजा ने पूछा—"क्या कहा! दुर्गन्ध! हमारे शरीर से [दु]र्गन्ध आती है!"

कर्मचारी ने जवाब दिया—"हुजूर, मैनेजर साहब ही ऐसा [क]हते हैं। हम लोगों को तो कभी कोई दुर्गन्ध नहीं मालूम दी। [ब]ल्कि सुगन्ध ही मिलती रही।"

राजा ने फिर पूछा—"ठीक बतलाओ, यह सच बात है!"

उस कर्मचारी ने कहा—"हुजूर, जिन लोगों के सामने मैनेजर साहब ने कहा है उन सबों को बुलाकर पूछ लीजिए।

अधिक सुबूत की जरूरत नहीं। हुजूर स्वयं ही देख सकते कि जब वे आपके पास आवेंगे तो अपनी नाक में रूमा लगाये रहेंगे।"

हरिपद ने पूछा—"क्या यह ठीक था?"

राजकुमार ने कहा—"हां, किसी हद तक ठीक ही था वास्तव में बात यह थी कि माइकेल शराब बहुत पीते थे शराब की दुर्गन्ध कहीं राजा तक न पहुँचे, इसलिए वह अप मुँह के सामने रूमाल लगाये रहते थे। कर्मचारी ने इसी लक्ष्य कर राजा से इस तरह जड़ दिया। इसके पश्चात् ज माइकेल राजा के पास गये तो राजा ने उन्हें रूमाल लगा देखकर कर्मचारी की बात पर विश्वास कर लिया। बस, उ दिन से उनकी राजा साहब से अनबन हो गई, और उन्हें अ में नौकरी से इस्तीफा देना पड़ा।"

इसी समय दासी ने आकर कहा—"भोजन तैयार है।"

भोजन कर चुकने के बाद फिर यही चर्चा छिड़ी; पर कुछ निश्चय न हो सका। बहनोई का मन न देखकर हरि ने कहा, "कल तो शनिवार है। चलो, पिताजी से राय ले देखें, वह क्या कहते हैं?"

"बहुत ठीक" कहकर राजकुमार सोने के लिए बिस पर लेट रहा। हरिपद अपने स्थान पर जाकर पाठ य करने लगा।

राजकुमार बिस्तरे पर पड़ तो रहा; किन्तु उसे नींद

आई। आखें बन्द कर वह इधर-उधर करवटें बदलता रहा। बाहर पानी बरसने की आवाज कभी सुनाई देने लगती और कभी बन्द हो जाती थी। कालिदास ने ऐसे ही समय के लिए कहा है—

> "भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्ति चेतः,
> कण्ठाश्लेष प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।"

राजकुमार मन ही मन सोचने लगा, यदि मैं इस नौकरी को स्वीकार कर वहां चला जाऊं तो प्रायः वर्ष भर तक प्रभा से भेंट न हो सकेगी। एक वर्ष बीतने पर केवल एक महीने ही की छुट्टी मिलेगी। फिर वापस चला जाना पड़ेगा। प्रभा को वहां ले जाकर साथ रखने में भी ठीक न होगा। क्योंकि बिना किसी दूसरी स्त्री के परदेश में वह अकेले कैसे रह सकती है। यहां पर प्रति शनिवार न सही, तो दूसरे शनिवार को त्रिवेणी जाकर उसे देख तो आता हूं। नहीं, नहीं, कलकत्ता छोड़कर किसी दूसरी जगह जाने में मुझे बड़ा कष्ट होगा।"

दूसरे दिन सवेरे उठने पर राजकुमार का हृदय एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव करने लगा। उसने सोचा, आज प्रभा से भेंट होगी।

भोजन कर चुकने पर दस बजे राजकुमार दफ़र गया। किन्तु आज काम करने में उसका चित्त नहीं लगता। वह बार-बार घड़ी की ओर उत्सुकता से देखने लगता है।

कैसे दो बजे, और मैं छुट्टी पाऊं। यह वह सोच रहा

है। शनिवार को दो बजे दफ़्तरों में छुट्टी हो जाने का नियम है; पर यह केवल कहने ही के लिए। जब तक साहब बैठे रहते हैं, तब तक बाबू लोगों को भी बैठना पड़ता है। अस्तु। दो बज जाने पर भी जब छुट्टी होने में देर दिखाई पड़ी तब उसने हेड क्लर्क के पास जाकर बड़ी नम्रता से कहा—"आज मुझे कुछ काम है। जल्दी जाना चाहता हूँ"। यह कहते-कहते उसके चेहरे का रंग बदल गया।

हेड क्लर्क साहब जानते थे कि राजकुमार का विवाह हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं और वह प्रति शनिवार को ससुराल चला जाता है। हँसी के अभिप्राय से उन्होंने पूछा—"क्या काम है?"

राजकुमार का गला भर आया। गद्गद स्वर में उसने कहा—"साढ़े तीन बजे की गाड़ी से·······।" बस, इसके आगे वह कुछ न कह सका। उसका गला फिर रूँध गया।

हेड क्लर्क साहब ने पूछा—"क्या साढ़े तीन बजे की गाड़ी से कहीं बाहर जाओगे? तीन बज जाने पर चले जाना। अभी तो दो ही बजा है।"

एक दूसरा बाबू पास ही बैठा काम कर रहा था। उसने कहा, "आप क्या कहते हैं! अभी बेचारा घर जायगा। पन्द्रह मिनट साबुन से हाथ-मुँह धोयेगा। दस मिनट बाल सँवारेगा। इसके बाद कपड़ा बदलेगा। तब कहीं जा सकेगा। क्या इसमें कुछ समय ही न लगेगा? आपने न मालूम कब

ाह किया होगा। ये सब बातें कदाचित् अब आप भूल
े।"

हेड क्लार्क ने पूछा—"तो क्या, राजकुमार, तुम ससुराल
रहे हो? अच्छी बात है। जाओ।"

राजकुमार को छुट्टी मिल गई। वह हरिपद को लेकर
ढ़े तीन की ट्रेन से त्रिवेणी को रवाना हुआ। रेल में
ड़की के पास हरिपद और राजकुमार बैठे थे। हुगली
शन पर गाड़ी पहुँचते ही हरिपद बोल उठा—"अरे देखो,
समान।"

राजकुमार गिरीश बाबू की प्रत्येक बात जानता था।
सने हँसी-मजाक करने के लिए गिरीश बाबू का नाम
उसमान" और अपना नाम जगतसिंह रख लिया था।
रिपद के कहने पर उसने खिड़की से झाँककर देखा कि
रीश बड़ी तेजी से प्लेटफार्म पर इधर से उधर खाली गाड़ी
ंढ़ते फिरते हैं। राजकुमार ने से कहा—"मालूम
ड़ता है, उसमान बारजिलिङ्ग

सतीशदत्त
को देखते ही

है। शनिवार को दो बजे दफ़्तरों में छुट्टी हो जाने का नियम है पर यह केवल कहने ही के लिए। जब तक साहब बैठे रहते हैं, तब तक बाबू लोगों को भी बैठना पड़ता है। अस्तु। दो बज जाने पर भी जब छुट्टी होने में देर दिखाई पड़ी तब उसने हेड क्लर्क के पास जाकर बड़ी नम्रता से कहा—"आज मुझे कुछ काम है। जल्दी जाना चाहता हूं"। यह कहते-कहते उसके चेहरे का रंग बदल गया।

हेड क्लर्क साहब जानते थे कि राजकुमार का विवाह हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं और वह प्रति शनिवार को ससुराल चला जाता है। हँसी के अभिप्राय से उन्होंने पूछा—"क्या काम है?"

राजकुमार का गला भर आया। गद्गद् स्वर में उसने कहा—"साढ़े तीन बजे की गाड़ी से······।" बस, इसके आगे वह कुछ न कह सका। उसका गला फिर रूँध गया।

हेड क्लर्क साहब ने पूछा—"क्या साढ़े तीन बजे की गाड़ी से कहीं बाहर जाओगे? तीन बज जाने पर चले जाना। अभी तो दो ही बजा है।"

एक दूसरा बाबू पास ही बैठा काम कर रहा था। उसने कहा, "आप क्या कहते हैं! अभी बेचारा घर जायगा। पन्द्रह मिनट साबुन से हाथ-मुँह धोयेगा। दस मिनट बाल सँवारेगा। इसके बाद कपड़ा बदलेगा। तब कहीं जा सकेगा। क्या इसमें कुछ समय ही न लगेगा? आपने न मालूम कब

विवाह किया होगा। ये सब बातें कदाचित् अब आप भूल गये।"

हेड क्लार्क ने पूछा—"तो क्या, राजकुमार, तुम ससुराल जा रहे हो? अच्छी बात है। जाओ।"

राजकुमार को छुट्टी मिल गई। वह हरिपद को लेकर साढ़े तीन की ट्रेन से त्रिवेणी को रवाना हुआ। रेल में खिड़की के पास हरिपद और राजकुमार बैठे थे। हुगली स्टेशन पर गाड़ी पहुँचते ही हरिपद बोल उठा—"अरे देखो, उसमान।"

राजकुमार गिरीश बाबू की प्रत्येक बात जानता था। उसने हँसी-मजाक करने के लिए गिरीश बाबू का नाम "उसमान" और अपना नाम जगतसिंह रख लिया था। हरिपद के कहने पर उसने खिड़की से झाँककर देखा कि गिरीश बड़ी तेजी से प्लेटफार्म पर इधर से उधर खाली गाड़ी ढूंढ़ते फिरते हैं। राजकुमार ने हरिपद से कहा—"मालूम पड़ता है, उसमान दारजिलिङ्ग से लौट आये।"

मगरा स्टेशन पहुँचने पर दोनों ने देखा कि सतीशदत्त गिरीश बाबू की प्रतीक्षा में खड़े हैं। गिरीश को देखते ही सतीश ने प्रणाम किया।

बुरी ख़बर

आज सवेर हो से पानी बरस रहा है। प्रायः नौ बजे के समय जगदीश नंगे पैर, सिर पर छाता लगाये, बाजार से लौट रहे हैं। उनके एक हाथ में पान और मिठाई इत्यादि हैं, दूसरे हाथ में एक बड़ा भारी कटहल है। सवेरे ही स्त्री ने उनसे कहा था—"दामाद आया है। क्या सूखा भात उसे भी खिलाओगे?" इसी से विवश हो एक रुपया लेकर बेचारे ब्राह्मण ने, उस पानी में भीगते हुए भी, बाजार जाना मुनासिब समझा।

जैसे-तैसे जगदीश घर लौट रहे हैं। राह में कहीं कहीं तो कीचड़ के मारे पैर रुकता ही नहीं। हवा जोर होने के कारण पानी की बौछारों से सारा शरीर लथ-पथ हो रहा है। फिर भी यदि कोई मित्र पूछ बैठता है कि कटहल कितने में खरीदा, तो उसे रुककर मूल्य बतलाना ही पड़ता है। उनका स्वभाव ही ऐसा है कि वह प्रत्येक व्यक्ति की बात का उत्तर नम्रतापूर्वक दिये बिना नहीं रहते।

सतीशदत्त के मकान के पास पहुँचते ही पानी ने जोर पकड़ा। हवा का वेग भी बढ़ने लगा। सतीश बैठके के सामने

बरामदे में हुक्का लिये टहल रहा था। जगदीश को देखते ही उसने कहा—"आइए, दादा, बैठ जाइए। पानी कम हो जाय तब चले जाइएगा।"

जगदीश ने सोचा, पानी की बौछार से रहे-सहे सब कपड़े भी भींगे जाते हैं। इसलिए सतीश की बात उन्हें माननी ही पड़ी।

सतीश ने कहा—"कपड़े भीग गये हैं। घर से दूसरे कपड़े लाये देता हूं। बदल डालिए।"

"नहीं, कोई आवश्यकता नहीं।"

"बड़ा भारी कटहल लाये। कितने में खरीदा?"

"आठ आने में। वह तो दस आने से कम में देता ही न था; पर बहुत कुछ कहने-सुनने से आठ आने में राजी हुआ।"

"अच्छा मिला। आइए, बैठक में बैठिए। पानी बन्द होने पर चले जाइएगा।"

जगदीश ने कहा—"अरे भाई, पैरों में कीचड़ लगा है। भीतर नहीं जाऊंगा। यह पानी अब बहुत देर नहीं रुक सकता।"

सतीश बोला—"कीचड़ लगा है तो क्या हुआ? मेरी बैठक में कौन दरी-गलीचे बिछे हैं। आइए, भीतर बैठिए। इच्छा हो तो पानी ले आऊं, पैरों को धो डालिए।"

पनाले से पानी की बड़ी मोटी धार गिर रही थी। जगदीश ने उसी से अपने पैरों को धोया। फिर वह बैठक में

जाकर तख्त पर बैठ गये। सतीशदत्त पान लाने के लिए भीतर चला गया।

जगदीश ने बहुत दिनों से सतीश के यहाँ आना-जाना बन्द कर दिया था। कन्या का विवाह हो जाने के बाद से जब सतीश से भेट होती, अथवा उसके घर के सामने से निकलते, तो वह कन्नी काट जाते थे—मिलते नहीं थे। क्योंकि वह भली भांति जानते थे कि सतीश इन दिनों गिरीश के अन्तरंग मित्रों में से हैं।

सतीश ने जगदीश को पान लाकर देते हुए पूछा—"आपके दामाद साहब तो अच्छे हैं?"

जगदीश ने कहा—"हां, कल शाम की गाड़ी से आये हैं।"

सतीश ने कहा—ओहो, ठीक। कल मैं स्टेशन गया था। गाड़ी पर से हरिपद के साथ दुर्बल शरीरवाले एक व्यक्ति को उतरते देखा। क्या वही आपके दामाद हैं?"

"हां, वही हैं। कल तुम स्टेशन क्यों गये थे?"

"कल गिरीश बाबू भी उसी गाड़ी से आये थे न!"

"आगये? कहां से आये? दारजिलिङ्ग से?"

"दारजिलिङ्ग से तो दो-तीन दिन पहले ही आ गये थे। फिर हुगली चले गये थे।"

"हुगली का नाम सुनते ही जगदीश का कलेजा धक सा कर उठा। घबड़ाकर उन्होंने पूछा—"हुगली! हुगली क्या करने गये थे?"

सतीश ने चुपचाप दूसरी ओर मुँह कर लिया। मानों उसने सुना ही नहीं।

जगदीश ने फिर पूछा—"हुगली क्यों गये थे?"

सतीश ने जवाब दिया—"नालिश दायर करने।"

"किस पर?"

सतीश फिर न सुनने का सा बहाना कर दूसरी ओर देखने लगा।

जगदीश ने दुबारा पूछा तब उसने कहा—"ओह! आप नाम जानना चाहते हैं; किन्तु यह तो मैंने उनसे पूछा नहीं।"

यह सुनकर जगदीश बहुत डर गये। सतीश के चेहरे का रंग-ढंग देखकर यह प्रकट होता था कि वह सच्ची बात छिपा रहा है। दारजिलिङ्ग से लौटकर गिरीश चार दिन हुगली में रहे। यह उसे मालूम है। नालिश दायर की। यह वह जानता है। किस ट्रेन से आयेंगे, यह जानकर स्टेशन पर लेने गया। परन्तु किसके नाम पर नालिश की, यह वह नहीं जानता। भला यह भी कहीं हो सकता है? इसके सिवा बात छिपाने का क्या कारण? कदाचित यही कि सच बात सुनने-वाले को बुरी मालूम न दे। बाहर झमझम पानी बरस रहा है, ठण्डी हवा चल रही है, लेकिन जगदीश के माथे पर पसीना आने लगा। गिरीश यदि उसी के नाम नालिश कर आये हैं, तो क्या होगा?

घबड़ाकर जगदीश ने कहा—"सतीश, मेरा तुम्हारे साथ

बहुत दिनों से मेल है। मैं तुम्हें भाई के समान समझता हूं। तुम भी मुझे दादा कहते हो, और उसी तरह मानते भी हो। केवल यह विवाह हो जाने के बाद ही से तुम्हारे हमारे बीच कुछ अन्तर पड़ गया है; परन्तु उसमें मेरा कोई अपराध नहीं। यह मैं किसी समय तुम्हें समझाऊँगा। इस समय मेरे साथ छल न करो। सच बताओ, क्या गिरीश ने मेरे ही ऊपर नालिश की है?"

सतीशदत्त कुछ देर तक सिर झुकाये सुनता रहा। बाद में बोला—"अब छिपाने से फायदा क्या? शायद कल ही सम्मन आवे।"

जगदीश बन्द्योपाध्याय को मानो काठ मार गया! टुकुर-टुकुर सतीश के मुँह की ओर देखने लगे। बड़ी देर तक तो उनसे बोला न गया। कुछ शान्त होने पर उन्होंने पूछा—"कितने रुपये की नालिश की है, जानते हो?"

सतीश ने जरा भौंहें टेढ़ी करते हुए कहा—"असल और सूद मिलाकर दो हजार रुपये की नालिश हुई है।"

जगदीश थोड़ी देर तक चुप रहे। इसके बाद बोले—"अच्छा सतीश, इससे बचने का कोई उपाय नहीं हो सकता?"

"कैसा उपाय?"

"भाई, मेरा तो सर्वस्व चला जायगा। लड़कों-बच्चों को लेकर कहां खड़ा हूंगा? यह कहते-कहते जगदीश रो पड़े।"

सतीश ने कहा—"किसी तरह रुपये का प्रबन्ध करो।"

"इस समय मैं कहाँ से रुपये का प्रबन्ध करूँ? कौन मुझे रुपया देगा? इस तरह का प्रबन्ध करने को मैं तुमसे भी नहीं कहता।"

"तब कैसा उपाय करने को कहते हो!"

"किसी तरह गिरीश को अनुनय-विनय करने से—उनकी रज़ामन्दी से—क्या कुछ समय की मोहलत नहीं मिल सकती!"

"मोहलत!" कहकर सतीश दूसरी ओर मुँह फेरकर कुछ सोचने लगा। बाद में बोला—"वह मान लेंगे, इसकी तो बहुत कम आशा है।"

जगदीश एकाएक उठकर खड़े हो गये और सतीश का हाथ अपने हाथ में लेकर बोले—"भाई मेरी ओर से तुम उनसे समझा कर कहो कि जहाँ उन्होंने कुसमय में रुपये देकर मेरी इतनी सहायता की वहाँ मुझे वह दो वर्ष की मोहलत और दें तो मैं उनका ऋण पाई-पाई चुका दूँगा।"

सतीश ने कहा—"अरे दादा, मुझे क्यों बीच में डाल रहे हो? भला बताओ, मेरे हाथ में क्या है?"

"तुम्हारे हाथ की बात नहीं है, यह मैं जानता हूं; परन्तु तुम उन्हें एक दफे अच्छी तरह से समझा सकते हो।"

"मेरे समझाने से वह क्यों सुनने लगे? वह आपके ऊपर कैसे नाराज़ हैं, यह आपसे छिपा नहीं। इसलिए मेरे समझाने-

बुझाने से कुछ होगा, इसकी आशा छोड़ दीजिए। मैं तो यह ठीक समझता हूं कि आप स्वयं उनके पास जाकर, अपनी जो कुछ हालत है, साफ-साफ कह दीजिए। ऐसा करने पर कदाचित् वह मान लें।"

जगदीश ने पूछा—"क्या वह मान लेंगे ?"

"कोशिश कीजिए। मैं वहां मौजूद रहूंगा; और यदि मौका मिला तो कुछ कह भी दूंगा।"

जगदीश को थोड़ा सा सहारा मिला। वह बोले—"हां भाई, इतना तो तुम मेरे लिए अवश्य करो। अच्छा यह बतलाओ, किस समय उनके पास जाऊं ? शाम के वक्त ठीक रहेगा ?"

सतीश ने जरा रुककर कहा—"शाम को ? उस समय बड़ी असुविधा रहेगी। देखते तो हो, लोग घेरे ही रहते हैं। इससे तो रात को साढ़े सात या आठ बजे जाइयेगा।"

"तुम वहां किस समय जाओगे, भाई ? यदि तुम कुछ पहले से जाकर वहां कह रखोगे तो अच्छा होगा।"

मैं तो पहले जाऊंगा ही; क्योंकि शाम को वहां मेरा निमंत्रण है। अच्छी बात है, मैं भली भांति उन्हें समझा-बुझा रखूंगा।

"बहुत अच्छा। यही सलाह रही। जल रुक गया है। मैं अब जाता हूं।"

सतीश ने कहा—"जाइएगा ? अच्छा, नमस्कार दादा !"

जगदीश बन्द्योपाध्याय तरकारी, पान और मिठाई की पोटली लिये हुए किसी प्रकार घर पहुँचे।

सतीश का दूत-कार्य

दोपहर से पानी बन्द था। शाम को साढ़े चार बजते-बजते बादल फिर इधर-उधर दौड़ते दिखाई दिये। आकाश की यह दशा देख सतीशदत्त एक अँगौछा कन्धे में डाल हाथ में छाता लेकर गिरीश के घर की ओर चल पड़े।

गिरीश अकेले बैठके में लेटे हुए एक हाथ में पंखा लिये डुला रहे हैं। सतीश को देखते ही बोल उठे, "आओ जी, बैठो।"

सतीश ने बैठते ही कहा—"अरे बाप रे! हवा तो एकदम बन्द है। बड़ी गर्मी है दादा, एक गिलास पानी मँगाइए।'

गिरीश ने कहा—"अरे भाई ज़रा रुको तो सही। ठण्डे हो जाओ। तब फिर पानी भी पिओ।"

सतीश ने इधर-उधर ढूँढ़ने पर जब पंखा न पाया तो लाचार होकर "बंगवासी" अख़बार का एक अङ्क, जो वहीं पड़ा था, उठा लिया और कहा—"इसे अभी तक खोला भी नहीं!" इतना कहते हुए झट खोलकर वह उसीसे हवा करने लगा।

कुछ मिनटों के बाद गिरीश ने आवाज़ दी—"कृष्णा, ओ कृष्णा, ज़रा इधर तो आना।"

नौकर के आने पर हुक्म दिया—"बाबू के लिए एक तश्तरी में कुछ खाने को और गिलास में पानी ले आ।"

जलपान आने के पहले ही पानी बरसना शुरू हो गया और उसके साथ-साथ हवा भी चलने लगी।

"आः, प्राण बचा!" इतना कहते हुए गिरीश ने पंखा फेंक दिया और सतीश ने भी "बंगवासी" को गिरीश के तकिये के नीचे रख दिया।

इतने ही में नौकर ने एक तश्तरी में कुछ फल और मिठाई और गिलास में पानी लाकर सामने रख दिया। सतीश ने गिलास का पानी एक ही सांस में पीकर कहा—"अरे भाई कृष्णा, एक गिलास पानी और ला।"

गिलास नौकर को देकर सतीश ने तश्तरी हाथ में ली और आम खाते-खाते कहा—"आम तो बड़ा मीठा है दादा, मालूम पड़ता है, हुगली से लाये! क्या बम्बैया है?

"नहीं, बम्बैया नहीं है, मालदह है।"

जलपान कर चुकने पर सतीश ने कहा—"खिड़की बन्द कर देना चाहिए। बौछार आती है।"

गिरीश ने कहा—"नहीं जी, खुली रहने दो। कदम की बड़ी अच्छी खुशबू आ रही है।"

सतीश ने खिड़की से देखा, थोड़ी दूर पर एक कदम का

पेड़ पानी और हवा के झोंके से झूम रहा है। बोला—"हां, आप कहते तो ठीक हैं। भीनी-भीनी बड़ी बढ़िया सुगन्ध आ रही है। एक श्लोक याद आता है।"

"सुनाओ। कैसा श्लोक है?"

"श्लोक इस प्रकार है—

महीमण्डली मण्डपीभूत पयो-
धराक्रुद्ध हर्षासु वर्षासु सद्यः।
कदम्बे प्रसूनः प्रसूने मरन्दो।
मरन्दे मिलिन्दो मिलिन्दे मदोद्भूत।"

गिरीश ने पूछा—"इसका अर्थ क्या है?"

सतीश ने कहा—"महीमण्डली—मण्डपीभूत-पयोधर-र्थात्, मेघ ने इस पृथ्वी को एक बार मण्डपीभूत कर दिया—नों सारी पृथ्वी पर एक काला चँदवा सा रख दिया है—खिए न कैसा सुन्दर वर्णन है।"

गिरीश ने कहा—"बेशक।"

सतीश फिर कहने लगा—"वर्षा आरम्भ होने पर क्या खाई पड़ता है—यही कि कदम के पेड़ में फूल खिले हैं। न फूलों में मधु भरा हुआ है; और उस मधु को भौंरा पान र रहा है।"

गिरीश ने कहा—"वाह भाई वाह! वर्षा पर कोई दूसरा लोक भी सुनाओ।"

सतीश कहने लगा—"संस्कृत के महाकवियों ने वर्षा पर

बड़े सुन्दर-सुन्दर श्लोक कहे हैं। वह सब तो हैं ही। दो-एक उद्भट श्लोक सुनाता हूं। किसी ने कहा है—

घनतरघनवृन्दच्छादिते व्योम्निलोके
सवितुरथ हिमांशो संकथैव व्यरंसीत्।
रजनिदिवसभेदं मन्दवाता शशंतुः
कुमुदकमलगन्धा नाहरन्तः क्रमेण॥"

गिरीश ने कहा—"इसका क्या अर्थ है?"

सतीश ने कहा—"व्योम कहिए आकाश, घनतरघनवृन्द यानी मेघों से घिरा हुआ है। दो-चार घंटा नहीं, वरन् कई दिनों से घिरा हुआ है; और वह घिरा भी कैसा कि बिलकुल अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है। आकाश में इस समय सूर्य है अथवा चन्द्रमा, यह भी नहीं जान पड़ता। तब फिर दिन-रात कैसे जाना जाय? बताइए कोई उपाय। उन दिनों घड़ी-घण्टे तो थे नहीं। फिर कौन उपाय था कि दिन अथवा रात का होना मालूम किया जा सकता?"

गिरीश ने हँसकर कहा—"तुम्हीं बताओ।"

सतीश ने कहा—"कवि ने स्वयं ही बतला दिया है कि मन्द-मन्द हवा चल रही है, उसमें जब तक कुमुद की गन्ध आये तब तक रात है; और जब कमल की खुशबू आने लगे तब दिन समझना चाहिए।"

गिरीश ने कहा—"बहुत ठीक कहा।"

सतीश ने कहा—"यही बतलाने के लिए तो कवि को

तनी बड़ी अत्युक्ति करनी पड़ी।"

"अत्युक्ति कैसी ?"

"यही कि कई दिनों से बादल घिरे हैं। घोर अंधकार छाया हुआ है—ऐसा अन्धकार कि दिन में भी कुछ दिखाई नहीं देता! भला यह कैसे सम्भव है! दिन में चाहे जैसे मेघ छाये हों, ऐसा अँधेरा हो ही नहीं सकता।"

गिरीश बोले—"यदि ऐसा अन्धकार हो तो लोगों का काम कैसे चले ?"

सतीश ने हँसकर कहा—"प्रेमियों के लिए ऐसा समय बड़ा अच्छा होता है। काम-काज की ओर उस समय के कवियों की दृष्टि ही नहीं जाती थी। भर्तृहरिजी ने कहा है—

> आसारेण न हर्म्यतः प्रियतमैर्यातुं बहिः शक्यते।
> शीतोत्कम्पनिमित्तमायतदृशा गाढं समालिंग्यते।
> जातैः शीकरशीतलैश्च मरुतैारत्यन्त खेदच्छिदो।
> धन्यानां बत दुर्दिनं सुदिनतां याति प्रियासङ्गमे॥

इस प्रकार के दुर्दिन भी प्रिया के साथ रहने में सुदिन जान पड़ते हैं।"

गिरीश ने हँसकर कहा—"और विरह में ?"

सतीश ने कहा—"इसके जवाब में सारा मेघदूत भरा पड़ा है।"

गिरीश मुखोपाध्याय ने मेघदूत तो पढ़ा नहीं था। इससे वह कुछ समझ न सके। कुछ देर चुप रहकर सतीश

बोला—"और एक श्लोक है। उसका मतलब यह है कि एक मनुष्य विदेश जाता था। स्त्री से विदा माँगते समय कहने लगा, अभी मैं जाता हूं; किन्तु वर्षा से पहिले ही आ जाऊंगा। वर्षा में विरह अधिक सताता है, यह सोचकर दुःख न करो। मैं चाहे जहां रहूं; पर वर्षाकाल में आकर निश्चय ही तुम्हारे पास रहूंगा। स्त्री ने यह सुनते ही जोर से सांस लेना शुरू कर दिया। उसकी देह ने रोमाञ्चित होकर कदम्ब के फल का आकार धारण किया। सारा शरीर केतकी की तरह हिलने लगा। और उसकी दोनों आँखें मानो जलद—अर्थात् मेघों के समान हो गईं। जल गिरने में अब रह ही क्या गया! इस स्थान पर कवि रुक गया है। पर मतलब तो आप समझ ही गये होंगे!"

"क्या मतलब, यही न कि पति की विदेश-यात्रा सुनकर स्त्री रोने लगी?"

"केवल यही नहीं। किन्तु वर्षाऋतु में जैसे वायु चलती है, उसकी नाक से सांस चलने लगी। जैसे कदम फलता है, उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। जैसे केतकी के पत्ते हिलते हैं, वह काँपने लगी। और मेघों की तरह उसकी आँखों से जल गिरने लगा। अर्थात् वर्षा के सब लक्षण स्त्री के शरीर ही में पैदा हो गये! अतएव वह कहती है कि हे प्रियतम, वर्षा की प्रत्येक बात तो मौजूद है। आप जाते क्यों हैं?"

गिरीश ने कहा--"वाह वा, वाह वा, बड़ा बढ़िया भाव है। श्लोक तो कहिए।"

सतीश कहने लगे—

> "यामि प्रेयसि वारिदागम दिने आनीहि मामागतं।
> खिन्नां चेतसि मा विधेहि कथयन्त्येवं गवाक्षे मयि।
> निःश्वासैः पवनायितं वदनोद्ब्रैः कदम्बायितं।
> कान्त्या केशकिपत्रकायितमहो दृग्भ्यां पयोदायितम्॥"

कृष्णा ने आकर इसी समय सतीश को पान और तमाखू दिया। सतीश ने बाहर की ओर देखते हुए कहा—"पानी तो अब कम हो गया।"

गिरीश ने चश्मा लगाकर 'बंगवासी' को उठाते हुए कहा—"जगदीश की क्या खबर है? दामाद से कुछ बात-चीत हुई या नहीं?"

सतीश ने कहा—"ओहो, आपने ख़ूब याद दिलाई। एक बड़ा मज़ा हुआ।"

"क्या?"

इस पर सतीश ने, पानी बरसने के समय से लेकर, उससे और जगदीश में जितनी बातें हुई थीं, सभी कह सुनाईं। सुनकर गिरीश को बड़ा आनन्द हुआ। कहने लगे—"कल क्या सचमुच सम्मन आयेगा?"

"अजी उससे कह दिया। यही सुनकर तो बेटा की अक्ल ठिकाने आई है।"

गिरीश ने हँसकर कहा—"कितना समय चाहता है? दो वर्ष?"

"हाँ"

गिरीश ने कहा—"दो दिन का समय तो दूंगा नहीं—बेटा दो वर्ष की मोहलत चाहते हैं। रहें तो एक महीना और—फिर देखूंगा। कदाचित् दामाद मदद करे?"

सतीश ने कहा—"आप मियां मांगते और द्वार खड़े दरवेश! उसे अपने खाने का तो ठिकाना नहीं, वह श्वसुर को क्या खिला सकता है? भाग्य में दुख लिखा होने से मनुष्य को ऐसी ही सूझती है। किसी ने ठीक कहा है—विनाशकाले विपरीत बुद्धिः। आज कितना सुख होता! आज जगदीश को किस बात की कमी रह जाती? आई हुई लक्ष्मी को ठुकराना इसी को कहते हैं। रत्न पाकर ढेले की तरह फेंकना और कैसा होता है? इस समय एक श्लोक याद आता है।"

गिरीश ने कहा—"कैसा श्लोक?"

सतीश बोला—"जंगल में एक सिंह ने हाथी का वध किया। जब उसका मस्तक फटा तो उसमें से मुक्ता निकला। लाश को तो सियार वगैरः खा गये; किन्तु मुक्ता वहीं पड़ा रहा। उधर से एक भिल्लिनी निकली। दूर से उसे चमकता देख उसने उठा लिया; किन्तु कांच समझकर फौरन ही उसे फेंक दिया।"

गिरीश ने कहा—"बड़े मज़े का श्लोक है, सुनाओ तो।"

सतीश कहने लगा—

"[illegible] [illegible]।
कान्तारे [illegible] मुदा ॥
[illegible] दूरे महा—
[illegible] ॥"

गिरीश सुनते ही ठठाकर हँसे।

अब आकाश में बादल नहीं रहे। सूर्य अपना प्रकाश चारों
: दिवाकर अस्त होना चाहते हैं। गिरीश ने कहा—"अभी,
वासी पढ़ो। सुनना चाहता हूँ।"

सतीश ने चश्मा लगाकर बंगवासी को खोला और
: से पढ़ना आरम्भ किया। पढ़ते-पढ़ते निम्न लिखित
। आया—

"विलायत से समाचार आया है कि अब की बार घुड़दौड़
'मेरी गोल्ड' नाम का घोड़ा अव्वल हुआ है। फाइफेनेला
र कोवाबू नाम के घोड़े क्रमशः दूसरे और तीसरे नम्बर
। उसमें बम्बई की एक पारसी स्त्री को पहला इनाम मिला
और दूसरा इनाम आस्ट्रेलिया के एक व्यापारी तथा
सरा जबलपुर-बैंक के मैनेजर साहब को मिला है। पहला
ाम छः लाख रुपये का है। पारसी महिला एक बड़े
नी की कन्या है। जल में जल और धन में धन मिलना
ी को कहते हैं।"

यह समाचार पढ़ चुकने पर सतीश ने देखा कि गिरीश

का मुँह तथा आँखें विचित्र ढंग की हो गईं। वह तकिये के सहारे ऊपर को देखते हुए भौचक्के से रह गये; और उनकी साँस बड़ी तेज़ी से चलने लगी!

सतीश बोला—"दादा, यह क्या हुआ?"

गिरीश ने कहा—"हृदय में दर्द हो रहा है।"

सतीश ने ज़रा नजदीक जाकर गिरीश के वक्षस्थल पर हाथ फेरते हुए कहा—"कैसा दर्द? किसी को बुलाऊं? अधिक कष्ट हो रहा है क्या?"

गिरीश ने कहा—"एक गिलास पानी मँगवाओ।"

सतीश भीतर जाकर एक गिलास पानी ले आया। पानी पी चुकने पर गिरीश दोनों हाथ सिर पर रखकर बैठ गये।

सतीश ने पूछा—"क्या कष्ट बढ़ रहा है?"

गिरीश ने कहा—"कुछ समझ में नहीं आता। मुझे भीतर ले चलो। सोऊंगा।"

सतीशदत्त गिरीश के घुड़दौड़ के टिकट खरीदने की बात नहीं जानता था। इसीसे वह कुछ भी न समझ सका कि मामला क्या है। गिरीश को भीतर ले जाकर उसने बिछौने पर लेटा दिया; और धीरे-धीरे पङ्खा करने लगा।

प्रभा बड़ी हुई

घर जाकर सब सामान रसोईघर के पासवाली दालान में रख जगदीश हाथ-पैर धोने लगे। फिर अपने हाथ से एक चिलम तमाखू भर घर के एक कोने में फटी चटाई बिछा-कर लेट रहे। इसी दालान के पास जगदीश के सोने की कोठरी थी। वह दामाद के सोने के लिए आज खाली की गई है।

खिड़की खोलकर नीले आकाश की शोभा देखते हुए जगदीश उदास मन से हुक्का पी रहे हैं। खिड़की से एक बाग़ के सड़े हुए पत्तों की दुर्गन्ध और बकरियों के चिल्लाने की आवाज़ आ रही है। हुक्का पीते हुए जगदीश अपनी भविष्य-दशा का चिन्तन कर रहे हैं। वे सोचते हैं, गिरीश ने नालिश तो कर ही दी है। अब उपाय क्या है? क्या हाथ-पैर जोड़ने और ख़ुशामद करने से वह दया करेंगे? यदि उन्होंने न माना तो मकान और ज़मीन इत्यादि बिक जायगी। फिर स्त्री-पुत्र और कन्या आदि को लेकर कहाँ जायँगे? कहीं खड़े होने तक की भी तो जगह नहीं है—कैसे उन सब का पालन-पोषण होगा? दूसरों की स्त्रियों के पास कुछ न कुछ गहना होता है। वह ऐसे अवसर पर काम आता है। कुछ मित्र और सगे बन्धु-

बान्धव होते हैं। उनका सहारा मिल जाता है। पर हाय जग-दीश! तू क्या करे! तेरे लिए तो और कुछ भी सहारा नहीं। न गहने ही हैं, और न कोई अपना आदमी है!

बेचारा सोचने लगा, यदि सुन्दरवन की नौकरी छूट जाने पर और किसी की नौकरी कर ली होती तो आज यह दिन न देखना पड़ता। अब सिवा नौकरी करने के और उपाय ही क्या हो सकता है? ज़मीदारी का काम तो खूब अच्छी तरह से समझा हुआ है। गुमाश्ते की नौकरी भी मिल जाय तो बड़ी बात हो। नायबी पाने से भी काम चल सकता है। पास-पड़ोस के जमीन्दारों के यहां जाकर अब यही करना पड़ेगा। प्रयत्न करने पर कोई नौकरी मिल ही जायगी।

इस कोठरी से मिला हुआ बैठका है। दोनों की दीवार एक ही है। एकाएक वहां से पुत्र और दामाद के हँसने की आवाज जगदीश के कानों में पड़ी। बस, उनका ध्यान चिन्ता से छूट गया; और अब दूसरी बात याद आने लगी। सोचने लगे, यदि हरिपद इतनी आपत्ति न करता, तो गिरीश के साथ कन्या का विवाह हो ही जाता और यह विपत्ति सामने न आती। न तो नालिश ही होती और न कुछ और ही झगड़ा होता। क्या कोई बूढ़े के साथ अपनी लड़की नहीं ब्याहता? कितने ही ऐसा करते हैं। न जाने कहां से इस राजकुमार ने आकर सब मामला उलट-पलट दिया। उसका क्या बिगड़ेगा? अपने मज़े से कलकत्ते में रहता है। कोई चिन्ता नहीं, फिक्र नहीं, छोकरा

ठहरा! इससे हँसी-दिल्लगी सूझती है। मैं तो मरा जाता हूं। निःसन्देह, इस समय लड़के की बात मानकर मैंने बड़ी गलती की। अस्तु। जब विपत्ति को निमन्त्रण देकर बुलाया ही है, तब फिर सोच-विचार करने से क्या होगा? यह सोचते-सोचते जगदीश का चित्त राजकुमार की ओर से कलुषित हो गया।

कुछ देर बाद प्रभा ने आकर कहा—"बाबू, स्नान कीजिए। बड़ी देर हो गई है।"

जगदीश ने कन्या की ओर स्नेह भरी दृष्टि से देखकर पूछा—"राजकुमार और हरिपद स्नान करने गये?"

राजकुमार का नाम सुन प्रभा ने लज्जा से मुँह नीचा करके कहा—"दादा गये हैं।"

"अच्छा, मैं भी जाता हूं।"

"क्या आप को तमाखू भर दूं" कहकर प्रभा आंगन की ओर चलने को हुई।

"तू क्या भर देगी, बेटी!"

प्रभा ने हँसकर कहा—"क्यों बाबू, क्या मैंने कभी तमाखु भरकर नहीं दी?"

"अच्छा तो भर ला।"

प्रभा चिलम को हुक्के से उतारकर चली गई।

प्रभा के चले जाने पर जगदीश सोचने लगे, अभी केवल तीन ही महीने विवाह को हुए हैं; पर लड़की बहुत लज्जावती हो गई है। देखने में भी सुन्दर जान पड़ती है। पहले कुछ रोगी

सी थी; किन्तु अब स्वस्थ और वलिष्ट हो गई है। चाल बहुत ही धीमी और लज्जावती सुशील स्त्रियों की सी हो गई है। पहले की सी चञ्चलता अब नहीं रही।

जगदीश के हृदय में प्रश्न उठा, यदि उस बूढ़े के साथ विवाह हो जाता तो क्या बेटी की यह सुन्दरता और आनन्द-मयी मूर्ति देखने को मिलती? उत्तर मिला, 'नहीं—कदापि नहीं।' यदि उस बूढ़े खूसट के साथ विवाह होता तो निश्चय ही कन्या दिन पर दिन सूखती जाती। अपने स्वार्थ के लिए कन्या का बलिदान नहीं किया, सो अच्छा ही हुआ।"

गङ्गास्नान कर चुकने पर जगदीश पुत्र और दामाद के साथ भोजन करने बैठे; किन्तु प्रतिदिन की अपेक्षा कुछ अच्छी-अच्छी चीज़ें होने पर भी कुछ खाया न गया। जगदीश की स्त्री ही भोजन परोस रही थी। उसने स्वामी के खाने में अरुचि और मुख का भाव देखकर कहा—"क्योंजी, आज तुमने कुछ खाया नहीं, यह क्यों?"

जगदीश ने उत्तर दिया—"आज भूख नहीं है।"

हरिपद ने पूछा—"बाबू, आपकी तबियत तो अच्छी है?"

"हाँ, अच्छी है" कहकर जगदीश ने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

स्त्री समझ गई। कुछ बात अवश्य है, जिससे यह इतने दुखी हैं; किन्तु दामाद के सामने उसने ज़ोर देकर कुछ नहीं पूछा। वेचारी स्वयं उदास हो गई। एक-दो बार खाने

तो चीज़ें लेने का उसने अनुरोध अवश्य किया; पर अधिक कुछ न कह सकी।

भोजन कर चुकने पर पुत्र और दामाद पान लेकर जब बैठके में चले गये, और जगदीश अपनी आदत के मुताबिक जाकर लेट रहे, तब स्त्री को सारा हाल मालूम हुआ। सुनते ही उस पर भी वज्र सा गिरा और चारों ओर अन्धकार दिखाई पड़ने लगा। आंखें आंसुओं से भर आईं।

जगदीश ने कहा—"जाओ अब खाओ-पिओ, सोच करने से होगा ही क्या?"

स्त्री ने कहा—"नहीं, मैं अभी न खाऊंगी। प्रभा से खाने को कह आऊं"—यह कहकर उसने बाहर आकर प्रभा को पुकारा। प्रभा रसोईघर के पास बैठी थी। उससे उसने कहा—"बेटी, मेरे लिए थोड़ा सा खाना रख देना। बाकी तू जाकर भाई की थाली में परोस कर खा ले।"

प्रभा ने पूछा—"मां, तुम कब खाओगी?"

"वह लेटे हैं। मैं जाकर पंखा करती हूं। सो जायँ तब आऊंगी।"

"मैं भी उसी समय खा लूंगी।"

"नहीं बेटी, बहुत देर हो गई है। अब तुम न रुको। जाकर खा लो।"

प्रभा खड़ी हो गई और न जाने क्या सोचकर बोली—"अच्छा मां, तुम बाबू के पास जाओ।"

थाली को सामने रखकर वह बारंबार बाहर की ओर देखती जाती थी कि कहीं ऐसा न हो, मां आ जायँ! वह चाहती थी कि पहले थाली को श्रद्धा से प्रणाम करे और फिर भोजन करने में हाथ लगाये। निदान उसने वैसा ही किया। पति के खाने से बची हुई चीज़ों को उसने अपने भोजन में मिलाकर खाना शुरू किया।

वह मन ही मन कह चली—"हे स्वामी के प्रसाद, जब तक इस पृथ्वी पर रहूं, तुम्हें सदैव पाती रहूं।"

इतने ही में "खट" शब्द होते ही प्रभा एकाएक चौंक पड़ी। उसने समझा, मां आ रही हैं। किन्तु मां नहीं थीं, उसकी वह प्यारी बिल्ली थी, जो कहीं घूमने गई थी। प्रभा सोचने लगी, मैं इतनी बड़ी हो गई हूं, फिर भी मुझे लज्जा मालूम होती है, यह क्यों? जान पड़ता है, स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा होता है। मेरे पति भी बहुत ही लज्जाशील हैं। अस्तु। हम दोनों बराबर हैं। जैसे देवता वैसी ही देवी! यह सोचते सोचते वह मन ही मन हँस पड़ी। उसकी बिल्ली भी इधर-उधर कूदने लगी।

हमारे पाठक, विशेषतया पाठिकायें, इस बात को जानने के लिए उत्सुक होंगी कि प्रभा को पति की लज्जाशीलता का परिचय कैसे हुआ? हम इस सम्बन्ध में सिर्फ इतना ही कह देना चाहते हैं कि गत रात्रि में दोनों को बातें करते-करते जब तीन बज गये, तब पति ने कहा—"अच्छा, अब सोने दो।

अधिक समय तक जागने से सवेरे आंखों में खुमारी भरी रहेगी।"

प्रभा ने कहा—"भोजन के बाद दोपहर में सो रहना।" राजकुमार ने कहा—"नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता। दिन में सोने से मुझे लज्जा लगती है।"

बेचारी बिल्ली अभी तक आसरा लगाये चुपचाप बैठी थी। किन्तु कुछ फल न होते देख प्रभा की ओर ताककर बोली—"म्याऊं"-अर्थात् मुझे भी कुछ खाने को दो।

"तू क्या मेरी सौत है" यह कहकर हँसते हुए प्रभा ने उसे खाने को दिया।

जगदीश की संगीत-चर्चा

रात अँधेरी है। आकाश में बादल का नाम नहीं। चारो ओर तारे छिटक रहे हैं। करीब पौने आठ बजे जगदीश एक हाथ में लालटेन और दूसरे में एक मजबूत लाठी लिये टेकते-टेकते गिरीश के मकान पर पहुँचे। पैर में जूता और शरीर पर केवल एक चद्दरा पड़ा हुआ था।

जगदीश ने देखा, बैठका खुला है। भीतर एक लेम्प टिमटिमा रहा है; किन्तु वहां कोई भी नहीं है। सोचने लगे, सतीश

करता था कि, शाम को यहां निमंत्रण है, इससे वह तीसरे पहर ही आ जायगा; किन्तु वह अभी तक नहीं दिखाई पड़ता। सब ठीक कर रखने की बात थी, ऐसा भी कुछ नहीं मालूम होता।

बैठके के सामनेवाली दालान में लाठी टेक-टेककर जगदीश घूमने लगे। कदाचित् आवाज सुनकर कोई आ जाय। थोड़ी देर में भीतर से एक नौकर निकला। जगदीश ने उससे पूछा, "क्योंजी, बाबू कहां हैं?"

नौकर ने कहा "बाबू भीतर हैं।"

"क्या उन्हें खबर दे सकते हो? उनसे कहना, ज़रा बाहर आवें, कुछ विशेष कार्य है।"

"आप बैठके में बैठिए। मैं इत्तिला करता हूं।" कहकर नौकर वहां से चला गया।

जगदीश ने लालटेन की बत्ती कम कर दी। लाठी एक कोने में रख पैर का जूता उतारकर वह भीतर जाकर बैठ गये। नौकरी के विज्ञापन देखने की गरज से बङ्गवासी को उठाकर पढ़ने लगे; पर चश्मा साथ में न होने से पढ़ न सके। लाचार हो चुपचाप गिरीश बाबू के आने की राह देखने लगे।

मन में सोचते थे, बहुत दिनों बाद भेट होगी। उस दिन जब इसी बैठके में आकर 'तिलक' कर गया था, भेट हुई थी, तब से आज तक मुलाकात नहीं हुई। गिरीश का अपमान

अवश्य हुआ। विवाह का वचन देकर मैंने उसे पूरा नहीं किया; पर इस प्रकार बुरा मानना गिरीश की ज़्यादती है। कुछ भी हो, अब तो उनसे अनुनय-विनय करनी ही होगी। यह सोच-कर जगदीश कुछ लज्जित होने लगे।

दस मिनट प्रतीक्षा करने के बाद पैरों की आवाज़ सुनाई दी। परन्तु यह तो बूढ़े पैरों की आहट नहीं जान पड़ती। किसी नौजवान की चाल मालूम देती है। देखते-देखते सतीश-दत्त आ विराजे।

जगदीश ने पूछा—"कब आये ?"

"मैं तो तीसरे ही पहर आ गया था। आपको यहाँ आये कितनी देर हुई ?"

"अभी तो आया हूं। तुम्हें न देखकर समझा था कि सब मामला बिगड़ गया; परन्तु मेरी धारणा ग़लत निकली। तुम आ गये।"

सतीश ने हँसकर कहा—"भला आपसे वादा करके कैसे न आता।

विदुषां बदनाद्वाचः सहसा यान्ति नो बहिः।
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव॥

मसल मशहूर है—"मर्द की बात, हाथी के दांत।"

जगदीश ने सोचा, मैंने विवाह-विषयक वचन देकर पूरा नहीं किया, इसी से सतीश गुप्त रीति से कटाक्ष कर रहा है; किन्तु इसको सुनी-अनसुनी कर पूछा—"उन्होंने क्या जवाब दिया ?"

सतीश ने मुँह मटकाकर कहा—"उन्होंने यही कहा कि मेरे साथ जैसा बुरा बर्ताव हुआ, उसका बदला यही हो सकता है। मैं अब कुछ नहीं सुनूँगा।"

यद्यपि इस उत्तर का मिलना एक प्रकार से निश्चित ही था, तथापि जगदीश सुनकर बहुत दुखी हुए। कुछ देर तक चुप रहने के बाद बोले—"ज़मीन का दाम आज-कल बहुत बढ़ गया है। मुझे जितना देना है वह सब उसी से अदा हो जायगा। उसे लेकर वह मुझे छोड़ दें, तो भी मेरी रक्षा हो सकती है। मैं समझूँगा, उन्होंने मेरे साथ बड़ा उपकार किया।"

सतीश ने कहा—"मैंने यह भी कहा था। उन्होंने यही कहा कि 'यदि मेरा रुपया ज़मीन से अदा हो जायगा तो अदालत खुद ही मकान छोड़ देगी।' दादा, असल बात तो यह है—दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से कहा था:—

सूच्यग्रं न सुतीक्ष्णेन भिद्यते या च मेदिनी।
तदर्धम् नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव॥

"दादा, अब आपस में कहने-सुनने से कुछ भी न होगा। जो होगा वह अदालत ही से होगा। तमाखू पिओगे? अरे कृष्णा, एक चिलम तमाखू तो भर ला और भीतर से मेरा हुक्का भी लेते आना।"

एक गहरी सांस लेकर जगदीश बोले—"अच्छा, एक बार

ही दोनों चौंक उठे। गिरीश ने दूर ही से खड़े होकर बड़े क्रोध से कांपते हुए स्वर में कहा—"ब्राह्मण! तुम ब्राह्मण नहीं—चाण्डाल हो!"

जगदीश ने कहा—"क्यों! ज़रा बतलाओ तो सही, मैं चाण्डाल कैसे हूं!"

गिरीश ने ज़ोर से कहा—"तुम ठग हो, बदमाश हो, झूठे हो!"

जगदीश ने भी हाथ उठाकर कहा—"मैं झूठा, बदमाश, ठग हूं; और आप बड़े साधू हैं! बूढ़े हो गये, मरने के किनारे आये, फिर भी विवाह की लालसा बनी हुई है। वाह रे मेरे साधु परमहंस! दांत गिर गये, आंखों से कम दिखाई देने लगा, चेहरे पर सिकुड़न पड़ गई और देह कांपती है, फिर भी आप विवाह के लिए पागल हो रहे हैं। सफेद बालों पर मौर रखते लज्जा भी नहीं लगती! नालिश की है! मेरा सब कुछ—घर-ज़मीन नीलाम करा लेना चाहते हो! ले लो। देखता हूं, कितने दिन उसका सुख भोगते हो!" इतना कह, जूता पहिनकर, लालटेन उठा और लाठी लेकर जगदीश तेज़ी से वहां से चल दिये।

प्रमा रसोईघर में बैठी पूड़ियां बना रही है। उसकी मां बेलती जाती है। इसी समय उसने मां से सारी विपत्ति का हाल सुना। पिता कहां गये और क्यों गये, यह भी उसे मालूम हो गया।

दुःख और चिन्ता से भरी हुई दोनों ही अपना-अपना काम कर रही हैं, बीच-बीच में मां गहरी सांस लेती है; और प्रभा उसे देखकर रह जाती है। थोड़ी देर बाद आंगन में पैरों के शब्द सुनाई पड़े। प्रभा की मां ने सिर ढक लिया। धीरे-धीरे जगदीश अँधेरे में लाठी और बुझी हुई लालटेन लिये हुए भीतर आये। रास्ते में तेल कम होने से लालटेन बुझ गई थी।

स्त्री ने उत्कंठित होकर पूछा—"मिले थे?"

जगदीश चुप रहे।

फिर प्रश्न हुआ—"क्योंजी, भेट हुई थी?"

जगदीश फिर भी कुछ न बोले।

प्रभा भी शंका भरी आंखों से पिता की ओर देखती हुई बोली—"बाबू, आप बोलते क्यों नहीं?"

जगदीश लालटेन रखकर रसोईघर के पास ज़ीने की एक सीढ़ी पर बैठ गये। उनके दोनों हाथ लाठी पर और उस पर मुँह रखा हुआ था।

स्त्री यह दशा देखकर तुरंत उठ खड़ी हुई। बोली, "अरे यहां क्यों बैठते हो? उठो, उस कमरे में चलो। पानी रखा हुआ है। हाथ-मुँह धो डालो।" यह कहकर जगदीश को उठाने की चेष्टा करने लगी। प्रभा से उसने कहा—"बेटी, तुम भोजन ठीक से रख देना।"

घर के भीतर एक मिट्टी का चिराग़ जल रहा था। उसकी

रोशनी बहुत कम होने से घर में अच्छी तरह से उजाला न था। दालान के कोने में एक मिट्टी के घड़े में पानी रखा था और उसी के पास एक अँगीठा। स्त्री ने वहां जाकर कहा—"जूता उतारो और हाथ-पैर धो डालो।"

जगदीश 'अच्छा' कहकर जूता उतारने लगे।

'मैं धोये देती हूं' कहकर स्त्री ने पैर पकड़ लिये।

स्त्री के हाथों से पैरों को छुड़ाकर जगदीश खुद ही धोने लगे और बोले—"हरि और राजू कहां हैं? क्या अभी तक घूम कर नहीं आये?"

"वह तो मामी के यहां भोजन करने गये हैं। न्योता था न?"

"ओफ! भूल गया।"

हाथ-पैर धोकर जगदीश ने कहा—"चटाई बिछा दो। मैं सोऊंगा।"

स्त्री ने कहा—"अभी से क्या सोओगे। जरा कुछ खा लो, तब फिर सोओ। भोजन तैयार है।"

जगदीश ने कहा—"नहीं, मुझे भूख नहीं है।"

कोठरी के भीतर से चटाई लाकर स्त्री ने बिछा दी। उसी पर जगदीश आराम करने लगे और स्त्री उनका सिर दाबने लगी। गिरीश के यहां जो जो बातें हुई थीं, धीरे धीरे जगदीश ने सभी कह डालीं।

बातें सुनकर स्त्री की आखों में आंसू भर आये। वह बोली,

"इसने तुम्हारा बड़ा अपमान किया। उसकी इतनी हिम्मत! क्या भगवान, तुम भी नहीं देखते?"

"गिरीश, राजकुमार बहुत अभिमानी हो गया है।"

अन्त में दोनों की राय हुई कि हरिपद जाकर वकील से मकान बनाने के लिए सलाह लेनी चाहिए। इसके साथ ही नौकरी की भी तलाश करना बहुत जरूरी है। धीरे धीरे दस बज गया। मां भोजन बनाने को कहकर जब रसोईघर में गई, तो देखती क्या हैं कि रमा भोजन तैयार कर रही है। कन्या को जगाकर उसने स्वामी के लिए भोजन परोसा। फिर स्वामी को भोजन करा चुकने के बाद मां-बेटी स्वयं भोजन करने बैठीं।

रात को ग्यारह बजे जब हरिपद और राजकुमार भोजन करके घर लौटे तब रास्ते में राजकुमार ने पूछा—"क्यों भाई, नौकरी की बाबत तुमने पिताजी से नहीं पूछा?"

हरिपद ने कहा—"कल तो छुट्टी ही है। किसी समय पूछ लूंगा।"

गांव के अँधेरे रास्ते में दोनों हँसते-बोलते चले आ रहे हैं। घर के पास आते ही उन्हें गाना सुनाई पड़ा। सन्नाटे में गाने वाले का स्वर बड़ा ही मधुर और करुणाजनक मालूम होता था।

राजकुमार ने ठहरकर पूछा—"हमारे ही घर से तो आवाज़ आती है। कौन गा रहा है?"

हरिपद ने बतलाया—"बाबूजी की आवाज़ है।"

दोनों ही ठहरकर सुनने लगे—

राग धनाश्री

सबै दिन नाहिं बराबर जात।
सुमिरन भगति लेहु करि हरि की,
जौ लगि तन कुसलात।
कहुँ बक पग मग धूरि बटोरत,
भोजन को बिललात।
बालापन खेलत ही खोयो,
तरुनाई अरसात।
सूरदास औसर के बीते,
रहिहौ पुनि पछतात।

राजकुमार ने कहा—"भाई, बाबूजी तो बड़ा अच्छा गाते हैं।"

हरिपद ने कहा—"आओ, बहुत देर हो गई है।"

दोनों ही मकान के सदर दरवाज़े पर पहुँच गये। हरिपद ने आवाज़ दी —"माँ, ओ-माँ, दरवाज़ा खोलो।"

श्वसुर और दामाद

दूसरे दिन सवेरे बैठके में बैठे हुए राजकुमार ने हरिपद से पूछा—"बाबूजी की बाबत कुछ सुना ?"

"हां, सुना है।"

"मैंने कल रात में प्रभा से सुना। भाई, तुमने तो अभी तक कुछ भी नहीं बतलाया !"

हरिपद ने कहा—"मैं ही क्या जानता था ? कल रात में मैंने भी मां से सुना।"

"उपाय क्या सोचा ?"

हरिपद ने चुपचाप एक ठण्डी सांस भरी।

राजकुमार ने कहा—'मैंने एक उपाय सोचा है।"

हरिपद उत्सुकता से जानने के लिए राजकुमार की ओ देखने लगा। राजकुमार ने कहा—"मैंने क्या सोचा है, जा हो ? मैं वही चन्द्रगढ़वाली नौकरी स्वीकार कर लूं और तथा बाबूजी मेरे साथ रहें।"

हरिपद ने कहा—"यह उपाय ठीक तो है; किन्तु—"

"किन्तु क्या ?"

"किन्तु जब बाबूजी राजी होंगे तभी तो।"

राजकुमार ने दुखी होकर पूछा—'क्यों, बाबूजी क्या राजी होंगे?"

हरिपद ने कहा—"अच्छा कहूंगा।"

सच तो यह है कि हरिपद पिछली रात में माता-पिता से चुका था कि राजकुमार को चन्द्रगढ़वाली नौकरी के मिल पर मुल्क में सरकारी मकान, नौकर-चाकर और भोजन-ग्री इतनी मिलेगी कि किसी तरह का कष्ट न होगा। यह कर राजकुमार के साथ रहने के लिए माता तो जैसे-तैसे ो भी हुई; पर पिता ने यही कहा—"छिः, जीवन के तम दिनों में दामाद का अन्न खाऊं। हाय, विधाता, तू ने य में न जाने क्या-क्या लिखा है। मैं प्राण रहते ऐसा करूंगा।"

पर इस समय हरिपद ने यह बात राजकुमार से नहीं हाई।

प्रायः साढ़े सात बजा होगा। आज बादल आकाश में नहीं आई पड़ते। सूर्यनारायण अपनी तेज़ी पकड़ते जाते हैं। ऐसे समय में जगदीश वहां आये। राजकुमार ने देखा, जगदीश शरीर सूखकर कांटा हो रहा है। आंखें गढ़े में चली गईं। सूख गया है। पहले सीधे होकर चलते थे; पर आज र झुकाये खड़े हैं।

हरि, आज तुम बाज़ार से सौदा ले पैसे के पान, छै पैसे का साग

भाजी और दो आने की मिठाई—बस, जाओ, इतनी ही ची
ले आओ।"

हरिपद ने कहा—"बहुत अच्छा।"

"लो, फिर यह चवन्नी लो।" यह कहकर जगदीश ने पुत्र के हाथ में एक चवन्नी दी। "कल सारी रात मुझे नींद नहीं आई। जाकर जल्दी से गङ्गा-स्नान कर आऊं। अभी बाज़ार अच्छी तरह लगी न होगी, थोड़ी देर बाद चले जाना।" पुत्र से यह कहते हुए जगदीश घर के भीतर चले गये।

राजकुमार ने हरिपद से कहा—"चलो, मैं भी तुम्हारे साथ बाज़ार चलूंगा।"

हरिपद ने कहा—"तुम बाबूजी के साथ जाकर गंगा-स्नान कर आओ।"

राजकुमार ने हँसकर कहा—"क्या दामाद को बाज़ार जाना मना है? जाने से अपमान होता है?"

हरिपद ने कहा—"नहीं, यह बात नहीं है। बाबूजी अकेले गंगा-स्नान करने जा रहे हैं, यह मुझे अच्छा नहीं लगता।"

राजकुमार ने हरिपद की ओर विस्मित नेत्रों से देखते हुए कहा—"अच्छा, मैं बाबूजी के साथ जाता हूं।"

राजकुमार की इच्छा थी कि रास्ते में जगदीश से अपनी चन्द्रगढ़वाली नौकरी के विषय में कहूंगा और समझाऊंगा कि सब लोग मेरे साथ चलकर रहें। किन्तु सारा रास्ता बीत

गया, वह लज्जावश कुछ कह न सका। घाट पर भीड़ होने के कारण मौका न मिला। स्नान कर लौटते समय बड़ी हिम्मत कर उसने कह ही तो डाला। सुनकर जगदीश ने कहा—"नौकरी अच्छी तो है। तुम इसे स्वीकार कर लो।"

राजकुमार ने कहा—"पहले मेरी इच्छा इस नौकरी को स्वीकार करने की न थी। मैं सोचता था, इसे स्वीकार कर लेने से न तो बी० ए० पास कर सकूंगा; और न कानून ही पढ़ सकूंगा। किन्तु आपकी आज्ञा होने से मैंने स्वीकार कर लेना निश्चय कर लिया है।"

जगदीश ने कहा—"विकालत से यह हज़ार दर्जे अच्छी है। अभी विकालत पास करने में कम से कम तुम्हें चार-पांच वर्ष की देर है। फिर प्रेक्टिस जमने में न जाने कितने दिन लगें। आज-कल के वकीलों को देखते तो हो, बेचारे कितने परेशान रहते हैं। अपने गांव ही के लोगों को देख लो। जिस-जिस ने हुगली में विकालत करना शुरू किया, पांच-पांच, सात-सात, वर्षों तक घर से रुपया मँगाकर गृहस्थी का खर्च चलाया। इससे तो नौकरी अच्छी। पश्चिम के रजवाड़ों में जितने बङ्गालियों ने आरंभ में छोटी सी भी नौकरी कर ली, अंत में खूब बढ़े और मज़े में रहे।"

घर आकर जलपान करने के बाद राजकुमार बैठके में बैठा हुआ था। बाज़ार से लौटकर हरिपद ने पूछा—"बाबूजी कहां हैं?"

"पूजा करने गये हैं।"

"कितनी देर आये हुई ?"

"पन्द्रह मिनट हुए होंगे।"

"बाबूजी से कुछ बातचीत हुई थी ?"

"हां हुई थी। सामान रख आओ, फिर बताऊँ।"

हरिपद के घर से लौटने पर, जो-जो बातें जगदीश और राजकुमार में हुई थीं, सभी एक-एक करके राजकुमार ने कह सुनाईं। अन्त में उसने कहा—"भाई, बाबूजी से असली बात तो मैं कह न सका। चलने के लिए उनसे कहने की मेरी हिम्मत ही नहीं हुई। मां से कहना चाहता हूं। क्यों, ठीक है न ? अच्छा बताओ तो सही, मां से किस समय कहूं ?"

हरिपद ने कहा—"माँ इस समय भोजन बना रही हैं। भोजन करने के बाद कहना।"

भोजन कर चुकने पर हरिपद ने जाकर मां से कहा—"मां, राजकुमार तुमसे कुछ कहना चाहते हैं।"

सास और दामाद में अभी तक अधिक बातचीत नहीं थी। उसने पूछा—"क्या कहेगा ?"

"कल मैंने जो बात बाबूजी से कही थी वही तुमसे वह कहेगा ?"

"मुझसे कहने से क्या होगा ? वह तो राज़ी ही नहीं हैं।"

"तुमने बाबूजी से पूछा था ?"

'हां, पूछा था। परन्तु उन्होंने कहा—"राजकुमार का

ऐसा कहना वाजिब है। लड़कों का जो धर्म है, वैसा वह कहता है। परन्तु पुरुष होकर सपरिवार दामाद के यहां जाकर उसकी रोटियां तोड़ूं, यह कैसे हो सकता है! इससे तो भीख मांग खाना कहीं उत्तम है। अच्छा, राजकुमार को बुलाओ तो।"

हरिपद राजकुमार को बुला लाया।

राजकुमार ने आकर बड़े संकोच के साथ सास से अपना अभिप्राय प्रकट किया। हरिपद की मां ने जो-जो बातें अभी हरिपद से कही थीं वही फिर दुहरा दीं।

सुनकर राजकुमार ने कहा—"बाबूजी ऐसा कहते हैं! अच्छा, मैं उनके पास जाता हूं।"

बगल की कोठरी में चटाई पर जगदीश लेटे-लेटे तमाखू पी रहे थे। सहसा पुत्र के साथ दामाद को आते देख विस्मित नेत्रों से वह देखने लगे। दोनों आकर उनके पास चटाई पर बैठ गये।

राजकुमार ने पूछा—"बाबूजी, क्या मैं आपका लड़का नहीं हूं?"

जगदीश ने कहा—"बेटा, यह बात क्यों पूछते हो? मेरे लिए जैसे हरिपद वैसे तुम—दोनों एक समान हो।"

"हरिपद जब नौकरी करेंगे और आपसे तथा माताजी से वहां चलकर रहने को कहेंगे तो क्या आप नहीं जायँगे? इन्कार कर देंगे?"

जगदीश ने उदास होकर कहा—"नहीं, ऐसी कौन—"

राजकुमार बीच ही में बोल उठा—"यदि हरिपद और मैं आपके सामने एकही हैं तो फिर आप ऐसी बातें क्यों कहते हैं? सुना है, आपने कहा है कि दामाद के पास रहकर रोटियां तोड़ने से तो भीख मांगकर खाना अच्छा है। ऐसी कठोर बात आपने कैसे कही?" यह कहते-कहते राजकुमार की आंखों से आंसू निकल पड़े।

जगदीश ने हुक्का हटाकर कहा—"बेटा, तुम दुखी मत हो। पहले मेरी बात सुनो। इतना कहते हुए वह अँगौछे से राजकुमार के आंसू पोछने लगे।

राजकुमार बड़ी व्याकुलता से श्वसुर की ओर देखने लगा। जगदीश ने फिर हुक्का उठा लिया। वह सोचने लगे राजकुमार को क्या कहकर समझावें।

राजकुमार बोला— "मैंने सब बातें सुनी हैं। कैसी विपत्ति का सामना है, यह मुझसे छिपा नहीं। घर-ज़मीन सभी कुछ हाथ से जाता दिखाई पड़ता है। बचने का कोई उपाय नहीं दिखाई देता। मेरे मां नहीं, बाप नहीं, जो कुछ हैं आप ही हैं इधर आप भी हरिपद और मुझको एकसा समझते हैं। फिर क्यों—"

जगदीश ने बीच ही में कहना शुरू किया—"देखो बेटा, यह मेरा पुरखों का घर है। इसी में मेरा जन्म हुआ। मेरे पिता, भाई, सभी का जन्म और मरण इसी में हुआ। आज वही मेरा

: हाथसे निकला जाता है। यह दुःख मैं कैसे सह सकूंगा ? दे कोई यह प्रश्न करे कि नालिश हो ही गई है, आज न हो, कल डिग्री भी हो जायगी, फिर घर कैसे बचा सकोगे ? या उपाय सोचा है ? मैंने जो निश्चय किया है वह यह है कि ाज ही कल में कोई नौकरी ढूंढ़कर बाल-बच्चों को वहाँ जाकर बिठा दूँगे। फिर यदि ईश्वर ने वह दिन दिखलाया ो जो आदमी नीलाम में इस घर को खरीदेगा उससे इसे ाल ले लूंगा।"

राजकुमार ने कहा—"नीलाम में इसे सिवा गिरीश मुखोाध्याय के और दूसरा कौन खरीदेगा ? वह जैसे आपके शत्रु हैं, उससे यह आशा नहीं कि वह फिर आपके हाथ इसे वेंगे ?"

जगदीश ने कहा—"वह यदि तब तक ज़िन्दा रहे तो अवश्य मुझे न देंगे; किन्तु मनुष्य-जीवन कमल के पत्ते पर जल के समान है। उसका आसरा ही क्या ? गिरीश अब बूढ़े हुए। उनके बाद उनके लड़के मेरे साथ ऐसा व्यवहार कदापि न करेंगे। वे बड़े भले लड़के हैं।"

स्त्री दरवाज़े के पास खड़ी सब सुन रही थी। पति का मतलब समझकर वह सिहर उठी। मन ही मन कहने लगी, "नारायण नारायण, बड़ा अपराध हुआ! क्षमा करो और सब का मंगल करो।"

' नौकरी मिलना कोई साधारण बात तो है नहीं। एक-दो

महीने की देर भी हो सकती है। तब तक सब लोग कहां रहेंगे? सम्भव है, ऐसी आफ़त में हरिपद का पढ़ना भी बन्द होजाय; और उसे नौकरी करना पड़े। इस पर भी यदि यहां कोई ठीक घर रहने को न मिला तो व्यर्थ में कष्ट उठाना होगा।" —इत्यादि बातें समझाकर राजकुमार श्वसुर से बारम्बार कहने लगा कि आप सब लोग चन्द्रगढ़ ही चलिये। हरिपद भी पिता से यही कहने लगा। इन सब बातों में एक घण्टा बीत गया। अन्त में जगदीश ने कहा—"अच्छा तुम लोग प्रभा और उसकी मां को ले जाओ। मैं यहां कोई नौकरी की तलाश करूंगा?"

लाचार हो राजकुमार इस बात पर राज़ी हो गया। उसी दिन उसने चन्द्रगढ़ को एक चिट्ठी लिखी कि उसे नौकरी करना स्वीकार है। दूसरे दिन हरिपद और राजकुमार दोनों कलकत्ते चले गये।

दो दिन बाद हुगली से अदालत के चपरासी ने आकर सम्मन दिया। दावे की रक़म दो हज़ार तीन सौ छः आना और तारीख बारह अगस्त मुकर्रर थी। सम्मन लेकर जगदीश ने जंत्री देखी। आज से सोलहवें दिन मुकदमा था।

दूसरे सप्ताह एक दिन आठ बजे रात के समय एकाएक राजकुमार ने आकर कहा—"चन्द्रगढ़ से मंजूरी की चिट्ठी आ गई है। दीवान ने लिखा है, जितनी जल्दी हो सके, चले आओ।"

जगदीश ने पत्रा देखकर आगामी शनिवार को जाने का त स्थिर कर दिया।

राजकुमार के पास टाइमटेबुल था। देखकर उसने कहा— अच्छा, शनिवार को शाम की गाड़ी से रवाना होकर रात आठ बजे बर्दवान पहुँचूगा। वहां से दो घण्टे बाद डाक- ड़ी में सवार होकर दूसरे दिन सवेरे बक्सर पहुँचूंगा।"

हरिपद को साथ लेकर शुक्रवार के दिन आने को कहकर जकुमार कलकत्ते चला गया।

जीवन क्षणभङ्गुर है

मादों का आखिरी दिन है। करीब तीन बजे होंगे। एक थ में कैनवेस का बेग और दूसरे में छाता लिये हुए जगदीश न्द्योपाध्याय सड़क पर चले जा रहे हैं। वह पांडुआ से येंचो ाना चाहते हैं। रेल से जाने में पांच पैसे किराये के देने ड़ते। किराया बचाने की ग़रज़ से बेचारे पैदल ही चल ड़े हुए।

इस समय जगदीश की पहली सी दशा नहीं रही। शरीर सूखकर आधा रह गया है। स्त्री और कन्या को दामाद के साथ घटगद भेजकर एक महीने से नौकरी के लिए इधर-उधर

मारे-मारे फिरते हैं। कहीं नौकरी नहीं मिलती। आस-पास के बहुतेरे जमींदारों की खुशामद की; किन्तु कुछ फल न निकला। अबुईहाटी के ज़मींदार पचीस रुपये मासिक पर एक मुख्तार आम चाहते थे; पर उस नौकरी के साथ पाँच सौ रुपये की जमानत की शर्त लगी थी। इसी से वहां भी कुछ ठीक न हुआ। किसी-किसी ने कहा, दशहरे के बाद आना। परन्तु दशहरे के आने में अभी बहुत देर है। कुंआर में कहीं दशहरा होता है; और अभी भादों खतम हुआ है।

इस बीच में जगदीश दो दफे गांव भी हो आये। पहली दफे जब गये तो कुछ चीज़ें बेंचकर थोड़े से रुपये नक़द कर लिये थे; परन्तु दूसरी दफे जाने पर वहां नीलाम का इश्तिहार टँगा देखा। निश्चित तारीख पर डिक्री का रुपया न देने से घर-ज़मीन इत्यादि सभी चीज़ें नीलाम कर दी जायँगी। यह जानकर घर में दो-चार चीज़ें जो रह गई थीं, एक पड़ोसी के घर रखकर वह चले आये।

भादों की तेज़ धूप में डेढ़ कोस पैदल चलने से बेचारे जगदीश थक गये। पास ही एक चबूतरा था और उसके निकट एक पेड़ था, जिसकी छाया उस चबूतरे पर पड़ती थी। जगदीश उसी पर बैठकर विश्राम करने लगे। चबूतरे से कुछ दूर हटकर थोड़ा सा बरसाती पानी इकट्ठा हो गया था। जगदीश प्यासे होने के कारण थोड़ी देर तक उस पानी की ओर देखते रहे। अंत में प्यास न सह सकने पर धीरे-धीरे वहां

रुक गये और हाथ-मुँह धोकर उन्होंने दो चुल्लू पानी पी लिया। फिर उसी चबूतरे पर जाकर बैठ गये। बेग खोलकर उन्होंने चश्मा और एक पत्र निकाला। यह पत्र चन्द्रगढ़ से आया था और त्रिवेणी जाने पर उन्हें मिला था। इसमें राजकुमार ने लिखा था—"बाबूजी, अभी तक आपको कोई नौकरी नहीं मिली, यह जानकर हम लोग बहुत दुखी हैं। आप इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। माताजी कहती हैं कि आपको ऐसा परिश्रम और कष्ट उठाने का अभ्यास नहीं है। कहीं आप एकाएक बीमार न हो जायँ। यदि परदेश में आप कहीं बीमार पड़े—ईश्वर न करे ऐसा हो—तो क्या दशा होगी! इस बात को सोचकर माँ सदैव रोया करती हैं। उनकी बारम्बार यही विनय है कि अब अधिक देर न करके आप सीधे यहां चले आइए। आपके आशीर्वाद से यहां किसी बात की कमी नहीं है। मेरी भी यही प्रार्थना है कि आप मुझे अपना लड़का समझकर तुरन्त चले आइए। यहां के दीवानजी बड़े भले आदमी हैं। मुझे बहुत ही स्नेह-दृष्टि से देखते हैं। महीना बीतने में अभी देर है, फिर भी उन्होंने मुझे दस रुपये पेशगी दिये हैं, जो आपकी सेवा में इस पत्र के साथ भेजता हूँ।" इसके बाद राजकुमार ने रेल का किराया क्या लगेगा, कब और किस गाड़ी से आने में सुविधा होगी, बक्सर से चन्द्रगढ़ कैसे पहुँचना होगा, इत्यादि बातें विस्तारपूर्वक लिखी थीं।

पत्र पढ़ते-पढ़ते जगदीश की आंखों में पानी भर आया। नोट खोलकर बार-बार देखने लगे। आज चार-पांच दिन इसे आये हुए; पर अभी तक उन्होंने इसे नहीं भँजाया। प्रतिदिन यही सोचते थे, यदि कहीं कोई सुविधा होजाय अथवा कोई नौकरी मिल जाय तो दशहरे तक इतनी ही और रक़म मिलाकर दामाद को धोती चदरा खरीदने के लिए भेज देंगे।

धीरे-धीरे दिन ढल चला। अभी डेढ़ कोस ज़मीन चलना बाक़ी है। वेंची पहुँचकर रात किसी दूकान में बिता सवेरे ज़मींदार के यहां नौकरी तलाश करनी होगी। यही सोचते हुए जगदीश उठे और धीरे-धीरे चलने लगे।

वेंची पहुँचते ही मालूम हुआ कि नम्बरदार की एक धर्मशाला है। उसी का रास्ता पूछते-पूछते वहां के मैनेजर से मिलकर रहने के लिए जगदीश ने थोड़ा सा स्थान चाहा।

मैनेजर साहब ने एक कोठरी दिखला दी। उस कोठरी में और कोई न था। एक चटाई बिछा बेग को सिर के नीचे रखकर जगदीश लेट रहे।

रात में नौ बजे नौकर ने आकर मुसाफिरों को भोजन बांटा। जगदीश भी उठकर भोजन करने बैठे; किन्तु वह कुछ खा न सके।

उसी रात को उन्हें जाड़ा देकर बुखार आ गया।

दूसरे दिन भी बुखार बना रहा। तीसरे पहर कुछ कम

ो गया। धर्मशाला के भण्डारी ने आकर पूछा—"भोजन की
कुछ इच्छा है?"

जगदीश ने क्षीण स्वर से कहा—"हाँ।"

"क्या खाओगे? साबूदाना बना दूँ?"

"यही बना दो। भाई, मुझे सहारा दो, तब उठ सकूँगा।
ज़रा मुँह तो धो लूँ। भण्डारी ने सहारा देकर उठाते हुए
कहा—"अरे तुम्हारा शरीर बहुत दुर्बल है कहीं दूर जाने की
ज़रूरत नहीं। यहीं बाहर बैठकर हाथ-मुँह धो लो।"

रसोईघर की दालान में बैठकर जगदीश ने हाथ-मुँह
धोया। सामने ही तुलसी का एक गमला था। उसे देखकर
जगदीश ने कहा—"आज संध्या, पूजा इत्यादि तो कुछ की
नहीं। चलकर तुलसी ही का प्रणाम कर लूँ।'

धीरे धीरे तुलसी के गमले के पास आकर उन्होंने प्रणाम
किया। एक पत्ती तोड़कर मुँह में डाली। फिर धीरे-धीरे
आकर बिछौने पर लेट गये।

दालान में एक लालटेन टँगी थी। उसकी रोशनी जग-
दीश की कोठरी में भी आती थी। उसी रोशनी में रात के
नौ बजे भण्डारी ने आकर कहा—"उठो, साबूदाना
लाया हूँ।"

किन्तु, कुछ उत्तर न मिला।

भण्डारी ने ज़रा झुँझलाकर फिर कहा—"अरे, सुनते
हो! उठो, साबूदाना खा लो।"

फिर भी कुछ उत्तर न मिला। भण्डारी ने ज़ोर से चिल्ला-कर कहा—"अरे भाई, उठो। साबूदाना खाकर सोओ। कोई सोने से मना थोड़ा ही करता है! यह कह ज्योंही उसने जग-दीश का हाथ पकड़कर उठाना चाहा त्यों ही उसे मालूम पड़ा कि शरीर जल रहा है—ज्वर बड़े ज़ोर से चढ़ा है—"अरे गोबरा, ज़रा लालटेन इधर तो लाना।" इतना कहते हुए भण्डारी ने नौकर को आवाज़ दी।

नौकर लालटेन ले आया। उसकी रोशनी से भण्डारी ने देखा कि जगदीश की आँखें बन्द हैं। सांस बड़े ज़ोर से चल रही है। हृदय पर हाथ रखने से मालूम हुआ कि वह आग सा जल रहा है। यह दशा देखकर उसने कहा—"ज्वर से यह बेचारा बेहोश है।"

धर्मशाला का यह नियम था कि यदि कोई बीमार पड़े तो फौरन ही डाक्टर को सूचना देनी चाहिए। अतएव भण्डारी ने जाकर मैनेजर साहब से कहा। मैनेजर साहब ने डाक्टर को सूचना दी। डाक्टर ने आकर स्टेथिस्कोप से वक्षःस्थल की परीक्षा कर के कहा—"हार्ट का एक्शन (Action) बहुत बढ़ गया है। फिर थर्मामीटर लगाकर देखा। एक सौ छः डिगरी बुख़ार था। "अच्छा, मैं दवा भेजता हूं। तीन-तीन घंटे बाद सारी रात दवा देना होगा। कल सुबह आकर फिर देखूंगा।"

इतना कहकर वह चले गये और तीन खुराक दवा भेज

दी। एक खुराक स्वयं मैनेजर साहब ने अपने सामने दी। उस समय दस बजा था। उन्होंने नौकर से कहा—'देख गोबरा, तुझे आज रात में यहीं रहना होगा। दो खुराक दवा रह गई हैं। एक खुराक तो रात में एक बजे और दूसरी चार बजे सवेरे देना।"

गोबरा ने कहा—"बहुत अच्छा।"

"आंख खुलेगी या नहीं? ठीक एक बजे दवा देना। समझे?"

"जी हां।"

"तू न हो तो आज रात में इसी कमरे में सो रह। ज्वर अधिक है। शायद पानी-वानी मांगें तो कौन देगा! तू यदि यहीं रहेगा तो रोगी को बड़ी सुविधा होगी।"

"बहुत अच्छा।"

मैनेजर साहब दफ़्र बन्द कर के अपने घर चले गये। भण्डारी भी अपने स्थान पर जाकर पड़ रहा। गोबरा आकर उस कोठरी में लेटा तो ज़रूर, किन्तु मच्छड़ों ने उसे बहुत परेशान किया। वह घंटा भर जैसे-तैसे लेटा रहा। अंत में उठ बैठा। सोचने लगा, क्या मालूम, कितना वक्त होगा, एक तो बज ही गया होगा। न हो तो एक खुराक दवा दे दूं। पेट जाने से असर करेगी ही। सवेरे उठकर एक खूराक फिर दे दूंगा।"

यह सोचकर गोबरा ने शीशी से दवा निकाली। देखा

तो एक खुराक के बजाय डेढ़ खुराक दवा गिलास में गिर गई थी। तब उसने बाकी दवा भी डालकर कहा—'अरे सभी पिला दूं। ज्वर जैसा चढ़ा है, उसमें कुछ ज़्यादा ही पिलाना अच्छा होगा।"

बस, फिर क्या था, उसने रोगी के मुँह में सारी दवा डाल दी। दवा कुछ तो रोगी के पेट में गई, बाकी बाहर ही गिर गई। इस तरह अपना काम खतम कर नींद में चूर गोबरा अपनी कोठरी में जाकर पड़ रहा और खुर्राटे भरने लगा।

दूसरे दिन गोबरा ने आकर देखा कि जगदीशवाली कोठरी का दरवाज़ा खुला है। सब सामान—बेग, छाता और वस्त्र इत्यादि—तो पड़ा है; परन्तु रोगी वहां नहीं है।

गोबरा पहले तो बहुत घबड़ाया। फिर सोचने लगा, शायद रात में रोगी का ज्वर उतर गया और वह तालाब पर मुँह-हाथ धोने गया हो।

धर्मशाला के पीछे ही तालाब था। वहां जाकर गोबरा ने देखा, कोई नहीं है।

लौटकर आंगन में खड़े होने पर गोबरा को मालूम हुआ कि रसोईघर की तरफ कुछ शोर-गुल हो रहा है। वहां पहुँचने पर वह देखता है कि तुलसी के पेड़ के पास कोई पड़ा है और कुछ आदमी उसे घेरे हुए बड़बड़ा रहे हैं।

निकट जाकर गोबरा ने देखा, यह कल के रोगी की मृत

देह है। तमाम शरीर में कीचड़ ही कीचड़ लगा हुआ है।

एक आदमी बोला—"यह देखो, तुलसी के पेड़ की मिट्टी खुदी हुई है। जान पड़ता है, इसने मिट्टी खोदकर अपने सिर और देह में लगाई है।"

दूसरे ने कहा—"ब्राह्मण को अन्त समय ज्ञान आ गया था। उसने सोचा कि कोठरी में मरने से तुलसी के पास ही मरना अच्छा है। बड़ा पुण्यात्मा था।"

भण्डारी ने कहा—"हाय, हाय, रातको मैंने साबूदाना बनाया था। बेचारे ने वह भी न खाया। ज्वर तो बड़े वेग से था; पर यह नहीं जान पड़ता था कि रात ही में मर जायगा।

मैनेजर साहब आये। सब बातें सुनकर कहा—"अफसोस! बेचारा ब्राह्मण मर गया; किन्तु उसके किसी आत्मीय तक को खबर न हुई। भाई, आदमी का शरीर और कमल के पत्ते पर जल का बून्द-दोनों एक समान हैं! किसी का कुछ भी विश्वास नहीं। नारायण, नारायण!"

गिरीश का पश्चात्ताप

धर्मशाला में जगदीश वन्द्योपाध्याय की मृत्यु हो जाने का समाचार त्रिवेणी गांव में पहुँचा। उनकी जेव की चिट्ठी से उनका नाम, पता जानकर घरवालों की खोज के लिए उसी दिन आदमी रवाना हुआ। धीरे-धीरे यह अशुभ समाचार कलकत्ते में हरिपद और चन्द्रगढ़ में राजकुमार ने भी सुना।

गांव में इधर-उधर लोग कहने लगे कि उस गरीब ब्राह्मण की मृत्यु के एक मात्र कारण गिरीश मुखोपाध्याय हैं। यदि वह अदालत में नालिश कर ब्राह्मण को बरबाद न करते तो इस बुढ़ौती में उसे नौकरी की तलाश करते हुए इस प्रकार प्राण न गँवाना पड़ता।

लोगों में चुपचाप ऐसी चर्चा होती थी। कोई खुलकर नहीं कहता था; क्योंकि अधिकांश में गांव के आदमी गिरीश के ऋणी थे। जो ऋणी नहीं थे, वह आसरा लगाये थे कि जरूरत के वक्त इनसे सहायता मिलेगी। फिर भी बहुत कुछ सावधानी करने पर भी धीरे-धीरे यह बात गिरीश के कानों तक पहुँच गई।

सतीश ने ही सब से पहले जाकर यह बात गिरीश से कही।

बहुत आदमियों का स्वभाव होता है, यदि उनसे कोई आकर कहे कि अमुक व्यक्ति तुम्हारी निन्दा करता था तो उसे अपना शुभचिन्तक जानकर खुश होते हैं। ऐसे लोगों में से एक गिरीश भी हैं। यही जानकर सतीश ने उनसे यह समाचार कहा।

सतीश ने केवल निन्दा की बात ही नहीं कही, वरन् यहां तक कहा कि अमुक व्यक्ति से इसी बात पर उसकी लड़ाई हो गई, अमुक से मारपीट तक की नौबत पहुँच गई, अमुक से जन्म भर का वैर हो गया। कहां पर कौन-कौन निन्दा कर रहा था, कैसे-कैसे शब्दों में बातें होती थीं, इत्यादि सभी कुछ गिरीश से कह सुनाया।

सतीश से निन्दा की बातें सुनकर गिरीश एकदम आगबबूला हो गये। कहने लगे, "देखो लोगों का यह कैसा अन्याय है! अपने रुपये के लिए कोई नालिश न करे, वह अपने रुपये छोड़ दे! जिसकी मृत्यु आ गई है वह तो किसी न किसी बहाने मरेगा ही! भला इसमें मेरा क्या दोष है!"

सतीश बोल उठा—"अरे, दैव पर किसीका क्या ज़ोर है! उसके तो यह भाग्य में लिखा था कि अमुक दिन, अमुक समय, अमुक स्थान और अमुक दशा में उसकी मृत्यु होगी। फिर तो उसको मरना ही पड़ता! आप चाहे नालिश करते अथवा न करते। ऐसा न होने से शास्त्र मिथ्या हो जाता है। जगदीश

आये तो उन्होंने बतलाया कि हरिपद ने चन्द्रगढ़ जाकर अपने पिता का श्राद्ध कर डाला है। सुनने में आता है, राजकुमार की नौकरी बड़ी अच्छी है। अब उन लोगों को खाने-पीने की जरा भी तकलीफ़ नहीं है। यह सुनकर गिरीश को कुछ धीरज हुआ।

जगदीश के घर और जमीन इत्यादि पर डिग्री हो गई। अगहन के महीने में सरकार की ओर से गिरीश को दखल मिल गया।

दखल मिल जाने के बाद गिरीश एक बार भी उधर नहीं गये। जगदीश के घर का ध्यान आते ही उनके हृदय में एक प्रकार की वेदना होने लगती। वह सोचने लगते, जो अपने सात पुरखों से इस घर में रहता चला आया, वह आज कहां है! यदि मैं नालिश न करता तो अब भी वह सपरिवार इसी घर में सुख से रहता। हाय, हाय, मैंने यह बहुत ही बुरा काम किया।

नौकर लोग कहते—"वह घर गिरा जाता है। न हो तो बेच डालिए। व्यर्थ ही रुपया फँसा हुआ है।" किन्तु गिरीश उधर कुछ भी ध्यान न देते थे। एक दिन एक खरीदार भी आया। पर गिरीश ने उससे यही कहा, "जरा ठहरिये, अभी नहीं बेचूंगा।"

अगहन बीता, पूस बीता, माघ आया। कई दिनों से बादलों से आकाश घिरा हुआ है। बीच-बीच में ठण्डी हवा चलकर मनुष्यों तथा पशु-पक्षियों को कँपा देती है। ऐसे

ही समय में एक दिन गिरीश एक लोई ओढ़े ह
छड़ी लिये हुए बाबूपाड़े की ओर चल दिये। उन्होंने
सतीश को साथ ले लें; किन्तु उसके मकान के पास
पर देखा कि दरवाजे पर ताला लटक रहा है।
शायद कहीं बाहर गया होगा। गिरीश को यह मालूम
सतीश ने ससुराल में कुछ माल पाया है। वहाँ का व
करने के लिए अगहन ही में उसने अपनी माता और
भेज दिया था। अतएव उन्होंने अनायास ही समझ
कि सतीश भी ससुराल गया होगा। अस्तु। गिरीश ने
ही जाकर जगदीश के मकान का ताला खोला।
घुसकर देखा, चारों ओर घास उग आई है। जिन
कियों में जँगले लगे थे, वे अब एक भी नहीं रहे।
सब दरवाज़ों में किवाड़े ही हैं। रसोई में जाकर देखा कि
किवाड़ों को कोई उठा ले गया। दो-तीन काली हाँडिय
थोड़ा सूखा भात पड़ा हुआ है। एक कोने में कुत्ते
"कूँ-कूँ" कर रहे हैं। जान पड़ता है, मानों यहाँ कभ
रहता ही न था।

रसोईघर से बाहर निकलकर ज्योंही गिरीश
में आये कि एकाएक वह सोचने लगे, इसी जगह
विवाह हो रहा था; और यहीं खड़े होकर उन्होंने यज्ञ
तोड़ते हुए यह शाप दिया था कि यदि मैं ब्राह्मण हूँ
भर के भीतर ही जगदीश की कन्या विधवा हो ज

इतना कहकर वह बेहोश हो गये थे।

गिरीश का विश्वास था कि यदि कोई ब्राह्मण को श्राप दे तो इस घोर कलियुग में भी उसका अनिष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। उन्हें इस बात का भी गर्व था कि वह एक कुलीन ब्राह्मण हैं। उन्हें प्रभा के विवाह के समय जो कुछ हुआ था वह स्मरण हो आया। मन ही मन वह सोचने लगे, क्या इसी लिए जगदीश की मृत्यु हुई! यह ठीक है कि उसका समय पूरा हो चुका था; किन्तु उसकी मृत्यु होने का एकमात्र कारण मैं हूं। मेरे ही श्राप से उसकी मृत्यु हुई।

वह फिर सोचने लगे, श्राप में प्रभा के विधवा होने की बात भी कही थी। कहीं वह भी पूरी न हो! यदि ऐसी बात हुई तो बड़ा भारी अन्याय होगा। क्रोध में आकर उस समय यह बात कह डाली थी; पर वास्तव में प्रभा के अनिष्ट होने की भावना मेरे मन में जरा भी न थी। वह बेचारी तो बिलकुल ही निर्दोष है। परमात्मन्, उसका किसी प्रकार अनिष्ट न करना।

यह सब बातें सोचते सोचते उनका सिर घूमने लगा। दिल में धड़कन पैदा हो गई। शरीर पसीने से तर-बतर हो गया। उन्हें जान पड़ा, मानो उनकी वही दशा होना चाहती है जो श्राप देते समय हो गई थी। शंका हुई, शायद वह फिर मूर्छित न हो जायँ।

ही समय में एक दिन गिरीश एक लोई ओढ़े हाथ में छड़ी लिये हुए बाबूपाड़े की ओर चल दिये। उन्होंने सोचा, सतीश को साथ ले लें; किन्तु उसके मकान के पास पहुँचने पर देखा कि दरवाजे पर ताला लटक रहा है। समझा, शायद कहीं बाहर गया होगा। गिरीश को यह मालूम था कि सतीश ने ससुराल में कुछ माल पाया है। वहाँ का बन्दोबस्त करने के लिए अगहन ही में उसने अपनी माता और स्त्री को भेज दिया था। अतएव उन्होंने अनायास ही समझ लिया कि सतीश भी ससुराल गया होगा। अस्तु। गिरीश ने अकेले ही जाकर जगदीश के मकान का ताला खोला। भीतर घुसकर देखा, चारों ओर घास उग आई है। जिन खिड़कियों में जँगले लगे थे, वे अब एक भी नहीं रहे। और न सब दरवाज़ों में किवाड़े ही हैं। रसोई में जाकर देखा कि दोनों किवाड़ों को कोई उठा ले गया। दो-तीन काली हाँडियाँ और थोड़ा सूखा भात पड़ा हुआ है। एक कोने में कुत्ते के बच्चे "कूँ-कूँ" कर रहे हैं। जान पड़ता है, मानों यहाँ कभी कोई रहता ही न था।

रसोईघर से बाहर निकलकर ज्योंही गिरीश दालान में आये कि एकाएक वह सोचने लगे, इसी जगह प्रभा का विवाह हो रहा था; और यहीं खड़े होकर उन्होंने यज्ञोपवीत तोड़ते हुए यह शाप दिया था कि यदि मैं ब्राह्मण हूं तो वर्ष भर के भीतर ही जगदीश की कन्या विधवा हो जायगी।

तना कहकर वह बेहोश हो गये थे।

गिरीश का विश्वास था कि यदि कोई ब्राह्मण को कलीफ़ दे तो इस घोर कलियुग में भी उसका अनिष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। उन्हें इस बात का भी गर्व था कि वह क कुलीन ब्राह्मण हैं। उन्हें प्रभा के विवाह के समय जो ाद हुआ था वह स्मरण हो आया। मन ही मन वह सोचने लगे, क्या इसी लिए जगदीश की मृत्यु हुई! यह ठीक है कि उसका समय पूरा हो चुका था; किन्तु उसकी मृत्यु होने का एकमात्र कारण मैं हूं। मेरे ही शाप से उसकी मृत्यु हुई।

वह फिर सोचने लगे, शाप में प्रभा के विधवा होने की बात भी कही थी। कहीं वह भी पूरी न हो! यदि ऐसी बात तो बड़ा भारी अन्याय होगा। क्रोध में आकर उस समय यह बात कह डाली थी; पर वास्तव में प्रभा के अनिष्ट होने भावना मेरे मन में ज़रा भी न थी। वह बेचारी तो कुल ही निर्दोष है। परमात्मन्, उसका किसी प्रकार अनिष्ट करना।

यह सब बातें सोचते सोचते उनका सिर घूमने लगा। में धड़कन पैदा हो गई। शरीर पसीने से तर-बतर हो या। उन्हें जान पड़ा, मानो उनकी वही दशा होना चाहती है शाप देते समय हो गई थी। शंका हुई, शायद वह फिर र्छित न हो जायँ।

ही समय में एक दिन गिरीश, एक लोई ओढ़े हाथ में छड़ी लिये हुए बाबूपाड़े की ओर चल दिये। उन्होंने सोचा, सतीश को साथ ले लूँ; किन्तु उसके मकान के पास पहुँचने पर देखा कि दरवाजे पर ताला लटक रहा है। समझा, शायद कहीं बाहर गया होगा। गिरीश को यह मालूम था कि सतीश ने ससुराल में कुछ माल पाया है। वहाँ का बन्दोबस्त करने के लिए अगहन ही में उसने अपनी माता और स्त्री को भेज दिया था। अतएव उन्होंने अनायास ही समझ लिया कि सतीश भी ससुराल गया होगा। अस्तु। गिरीश ने अकेले ही जाकर जगदीश के मकान का ताला खोला। भीतर घुसकर देखा, चारों ओर घास उग आई है। जिन खिड़कियों में जँगले लगे थे, वे अब एक भी नहीं रहे। और न सब दरवाज़ों में किवाड़े ही हैं। रसोई में जाकर देखा कि दोनों किवाड़ों को कोई उठा ले गया। दो-तीन काली हाँडियाँ और थोड़ा सूखा भात पड़ा हुआ है। एक कोने में कुत्ते के बच्चे "कूँ-कूँ" कर रहे हैं। जान पड़ता है, मानों यहाँ कभी कोई रहता ही न था।

रसोईघर से बाहर निकलकर ज्योंही गिरीश दालान में आये कि एकाएक वह सोचने लगे, इसी जगह प्रभा का विवाह हो रहा था; और यहीं खड़े होकर उन्होंने यज्ञोपवीत तोड़ते हुए यह श्राप दिया था कि यदि मैं ब्राह्मण हूँ तो वर्ष भर के भीतर ही जगदीश की कन्या विधवा हो जायगी।

ना कहकर वह बेहोश हो गये थे।

गिरीश का विश्वास था कि यदि कोई ब्राह्मण को कलीफ़ दे तो इस घोर कलियुग में भी उसका अनिष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। उन्हें इस बात का भी गर्व था कि वह एक कुलीन ब्राह्मण हैं। उन्हें प्रभा के विवाह के समय जो श हुआ था वह स्मरण हो आया। मन ही मन वह सोचने लगे, क्या इसी लिए जगदीश की मृत्यु हुई! यह ठीक है कि उसका समय पूरा हो चुका था; किन्तु उसकी मृत्यु होने का एकमात्र कारण मैं हूं। मेरे ही श्राप से उसकी मृत्यु हुई।

वह फिर सोचने लगे, श्राप में प्रभा के विधवा होने की बात भी कही थी। कहीं वह भी पूरी न हो! यदि ऐसी बात हुई तो बड़ा भारी अन्याय होगा। क्रोध में आकर उस समय मैंने यह बात कह डाली थी; पर वास्तव में प्रभा के अनिष्ट होने की भावना मेरे मन में ज़रा भी न थी। वह बेचारी तो बिलकुल ही निर्दोष है। परमात्मन्, उसका किसी प्रकार अनिष्ट न करना।

यह सब बातें सोचते सोचते उनका सिर घूमने लगा। दिल में धड़कन पैदा हो गई। शरीर पसीने से तरबतर हो गया। उन्हें जान पड़ा, मानो उनकी वही दशा होना चाहती है जो श्राप देते समय हो गई थी। शंका हुई, शायद वह फिर मूर्छित न हो जायँ।

इस बीच में क्या-क्या घटनायें हुईं, उनकी भी याद करते हुए उन्होंने एक गहरी साँस ली। बोले, "नहीं जी, अभी सन्ध्या नहीं की। चाय कैसे पीऊंगा? एक गिलास पानी दो। बड़ी प्यास लगी है। तमाखू है या नहीं? हाँ तो एक चिलम भर-कर पिलाओ।"

सतीश ने झट उठकर गिलास भर पानी ला दिया और तमाखू भरना शुरू किया।

चिलम भरकर जब वह लौटा तो सर्दी से काँप रहा था।

गिरीश ने कहा—"बस, बस। जल्दी से कपड़ा तो ओढ़ लो।"

सतीश ने काँपते हुए कहा—"देखिए, चाय पीते ही सर्दी दूर हो जायगी।"

गिरीश तमाखू पीने लगे। थोड़ी देर बाद एल्यूमीनियम के एक गिलास में चाय लेकर सतीश पीते-पीते बोला—"अरे बापरे, जान बची। अब उतनी सर्दी नहीं मालूम देती।"

गिरीश ने मुसकुराकर कहा—"सर्दी की दवा तो अच्छी मिली!"

सतीश ने कहा—"सर्दी की दवा तो एक से एक बढ़कर मालूम है; पर भाग्य अच्छा नहीं।"

गिरीश ने पूछा—"कैसे?"

सतीश ने कहा—"सुनिए। मेरे समान किसी अभागे कवि ने लिखा है—

"एनाक्षी नव यौवनाः परिलसत् सम्पूर्णचन्द्राननाः ।
कान्ता नैव गृहे गृहे न च दृढं जात्यं न काश्मीरजम् ॥
ताम्बूलं न च तूलिका न च पटी तैलं न गन्धाधिकं ।
सद्यो गोघृतपाचिता न वटकाः शीतं कथं गम्यते ॥"

"देखिए न, दवाइयाँ कितनी अच्छी हैं; पर इन सब का बनाने वाला कोई नहीं—वह आजकल अपने पिता के घर गई हुई हैं। मैं अकेला कर ही क्या सकता हूं ?"

सतीश का यह रंग देखकर गिरीश ने हँसकर कहा—"निःसन्देह तुम्हें बड़ी तकलीफ है। तुम जाकर बहूरानी को ले आओ। नहीं तो सर्दी से प्राण खो बैठोगे।"

सतीश ने कहा—"हां सरस्वती-पूजा की दो दिन की छुट्टी में जाकर अवश्य बुला लाऊंगा।" इतना कहकर वह तमाखू पीने लगा।

तमाखू पीते-पीते उसने कहा—"आज संध्या समय, ऐसी सर्दी में, बादलों के होते हुए आप कहां गये थे ?"

गिरीश कब और किस लिए घर से बाहर निकले, यह उन्होंने सतीश से कह सुनाया।

सतीश ने पूछा—"क्या उस मकान को बेचिएगा ?"

गिरीश ने थोड़ी देर चुप रहने के बाद कहा—"उसे बेचना नहीं चाहता।"

"तो क्या बगीचा लगवाइएगा ? यह तो ठीक न होगा ?"

गिरीश ने कहा—"नहीं, बगीचा तो नहीं लगवाना

चाहता। सोचता हूं, इसको गिरवाकर नया मकान बनवाऊं।"

सतीश ने कहा—"ठीक तो होगा। नरेन्द्र, सुरेन्द्र दो भाई हैं। आपस में बनी, न बनी—एक मकान अलग बन जाना अच्छा होगा।"

गिरीश ने कहा—"लड़कों के लिए नहीं।"

"तब फिर किसके लिए?"

"मेरा कुछ दूसरा मतलब है।"

"कौन सा मतलब?"

"यह फिर किसी दिन बतलाऊंगा। यदि तुम अगले रविवार को मेरे घर आओ तो इस विषय पर तुमसे सलाह करूंगा। अब रात हो गई है। इस समय जाता हूं। अभी सन्ध्या-पूजन करना है।" इतना कहकर गिरीश उठ खड़े हुए।

"आप जाना चाहते हैं?" कहकर सतीश भी उठा और साथ-साथ बाहर तक आया। फिर कहने लगा—"बड़ा अँधेरा है। लालटेन लेते जाइए।"

गिरीश ने देखा, अँधेरा बहुत है। उन्होंने कहा, "अच्छी बात है। लालटेन दे दो। घर पहुँचकर किसी नौकर के हाथ भेज दूंगा।"

सतीश की लालटेन लेकर गिरीश चले गये। सतीश ने दरवाजा बंद कर सोचना शुरू किया, मकान बनवायेंगे। लड़कों के लिए नहीं! तब फिर किसके लिए? मैं इस टूटे-फूटे मकान में रहता हूं। क्या मेरे लिए बनवाना चाहते हैं? कुछ भी

ो समझ में नहीं आता। इतने दिनों से मुसाहबी कर रहा हूं। ायद यही फायदा हो।

अनेक प्रकार की आशायें करते हुए सतीश ने तीन-चार दिन बिता दिये। रविवार को दोपहर के बाद उसने गिरीश के घर जाकर देखा कि वह कमरे में बैठे चश्मा लगाये कुछ पढ़ रहे हैं।

सतीश ने प्रणाम कर कहा—"क्या पढ़ रहे हो? बड़ा बारीक टाइप है।"

गिरीश ने इस खुशामद भरी बात के गूढ़ अर्थ को मन ही मन समझकर खुश होते हुए कहा—"सस्ता संस्करण है। इसी से महीन टाइप में छपा है। यह श्रीब्रह्मवैवर्त्त पुराण है। मूल और टीका दोनों बँगला अक्षरों में हैं। तुमने इसे पढ़ा है?"

"सब तो नहीं, कुछ अंश जरूर पढ़ा है।"

गिरीश ने कुछ देर तक पुस्तक देखने के बाद कहा—"तुमने तो संस्कृत पढ़ी है। एक श्लोक के अर्थ तो बतलाओ।"

सतीश ने कहा—"कौन सा श्लोक? देखूं।" "इतना कहकर उसने पुस्तक लेने को अपना हाथ आगे बढ़ाया।

गिरीश ने कहा—"पुस्तक लेकर क्या करोगे? श्लोक इस प्रकार है:—

"दिव्या स्त्री यं प्रवदति मम स्वामी भवाद् भव।
स्वप्ने दृष्ट्वा च जागर्त्ति स स राजा भवेद् ध्रुवम्॥"

"इस श्लोक में दिव्या स्त्री का क्या अर्थ है ?"

सतीश ने कहा—"दिव्या स्त्री माने देवकन्या।"

"देव-कन्या ? तब स्त्री क्यों कहा ?"

"स्त्री माने नारी। किन्तु कभी कभी पत्नी अथवा भार्या के भी होते हैं। ज़रा श्लोक फिर तो पढ़िए।"

श्लोक को दोबारा सुनकर सतीश ने कहा—'यदि कोई स्वप्न देखे कि उससे देवकन्या कह रही है, तुम मेरे स्वामी हो। इसके बाद वह मनुष्य जाग पड़े तो निश्चय ही राजा होता है।' अर्थ तो बिलकुल स्पष्ट है। आपको सन्देह क्यों हुआ ?"

गिरीश ने पुस्तक बन्द कर दी। पहले उन्होंने सतीश से केवल अपने स्वप्न देखने की बात कही थी। भट्टाचार्यजी की व्याख्या की बात नहीं कही थी। प्रसंग बदलने के अभिप्राय से उन्होंने शीघ्रता से कहा—"हां, मैंने तुम्हें इस लिए बुलाया था कि जगदीशवाले घर की बाबत तुम से पूछूं। उसे गिरवा-कर नया बनवाऊं अथवा मरम्मत करा दूं। बोलो, क्या करना चाहिए ?"

सतीश ने कहा—"उस मकान की जो हालत है उससे मरम्मत कराने की अपेक्षा फिर से बनवाना ही अच्छा है।"

गिरीश ने कहा—"हां,मैं भी यही सोचता हूं। इसके अतिरिक्त मेरा क्या अभिप्राय है, जानते हो ?"

सतीश चुपचाप उत्कण्ठा भरी आंखों से उनकी ओर देखता रहा।

गिरीश बोले—"देखो, मैंने जगदीश का घर इत्यादि नीलाम करवा लिया, इसमें अवश्य कोई बात क़ानून के विरुद्ध नहीं की, फिर भी न जाने क्यों मेरे मन में एक प्रकार की ग्लानि पैदा होती है। बेचारा ब्राह्मण उस घर में सात पीढ़ी से रहता था। यद्यपि उसने मेरे साथ बड़ा बुरा व्यवहार किया, तथापि मैं यदि उस पर नालिश न करता तो कदाचित् धर्मशाले में जाकर उसे इस प्रकार मरना न पड़ता। यह बात बिल्कुल ठीक है कि जो भाग्य में लिखा है उसे कोई टाल नहीं सकता। मैं यह भली भांति समझता हूं; परन्तु न जाने क्यों मेरा मन नहीं मानता।" इतना कहकर गिरीश ने अपना सिर नीचा कर लिया।

सतीश ने सोचा, उसने जो आशा की थी वह तो सफल होती दिखाई नहीं पड़ती। वह तो दूसरी ओर जाते मालूम पड़ते हैं। अतएव उसने धीरे से कहा—"हां, यह तो आप ठीक ही कहते हैं।"

गिरीश ने सिर उठाकर कहा—"मेरे भी बाल बच्चे हैं। मैंने उस ग़रीब के साथ बड़ा बुरा व्यवहार किया। क्रोध में आकर मैंने उसके साथ बड़ी निष्ठुरता की। गांव के लोग मेरी निन्दा करते हैं। ठीक ही करते हैं" इतना कहते हुए गिरीश की आंखें डबडबा आईं।

सतीश ने ब्रह्मवैवर्त्त पुराण उठा लिया था। उसके पढ़ने का बहाना कर वह चुप रहा।

गिरीश ने फिर कहना शुरू किया—"मेरा अभिप्राय जानते हो? जो होना था वह तो हो ही गया। अब उसका मकान उसे वापस करने का कोई उपाय नहीं रहा। मेरी इच्छा है कि मकान की मरम्मत कराकर अथवा नया बनवाकर उसके लड़के को दे दूं; और रजिस्टरी करा दूं। बोलो, तुम्हारी क्या राय है?"

सतीश ने सोचा, इन्होंने जो निश्चय किया है वह तो करेंगे ही, मैं बीच में पड़कर क्यों बुराई लूं। क्यों इन्हें व्यर्थ ही नाराज करूं? अच्छा तो इसी में है कि इनकी हां, में हां मिलाता रहूं। यदि ऐसा करूंगा तो आगे के लिए यह अपने हाथ में तो रहेंगे। यह सोचकर वह बोला "गिरीश महाशय; चरण की रज दीजिए। मस्तक में लगाना चाहता हूं।"

गिरीश ने पूछा—"तो तुम्हारी राय है?"

सतीश ने कहा—आप पूछते हैं कि राय है? अजी, इसमें किसकी राय न होगी? आपने तो गजब ढा दिया। जिसने आपके साथ ऐसा बुरा व्यवहार किया उस पर इतनी दया! इतना सौजन्य! किसी ने कहा है:—

अञ्जलिस्थानि पुष्पानि वासयन्ति करद्वयम्।
अहो सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा॥

अँजुली में फूल लीजिए तो दोनों ही हाथ समान रूप से

सुगन्धित हो जाते हैं। बायें और दाहने में कुछ भी भेद नहीं रहता। दूसरा अर्थ यह भी है कि जो दाहना (अनुकूल) है उसे भी और जो बायां (प्रतिकूल) है उसे भी सुगंधित करता है—कोई भेद नहीं मानता।"

गिरीश ने लज्जित होकर कहा - "इसमें दया की कोई बात नहीं। ब्राह्मण का सर्वस्व हरण कर जो पाप मैंने किया। उसका यह प्रायश्चित्त मात्र है।"

सतीश ने कहा—"आप तो अपने लिए ऐसा कहेंगे ही। परन्तु लोग कब इसे मानने लगे? आपका सा बर्ताव तो कहीं देखने में नहीं आया। केवल पुस्तकों में ही लिखा मिलता है। किसी ने साधु पुरुषों का लक्षण बतलाते हुए कहा है:—

"ते साधवो भुवनमण्डलमौलिभूता
ये साधुतां निरुपकारिषु दर्शयन्ति।
आत्मप्रयोजनवशीकृत खिन्नदेहः
पूर्वोपकारिषु खलोऽपि हि सानुकम्पः॥"

"जिससे कुछ भी उपकार की आशा न हो उसका जो कोई उपकार करे उसी को इस पृथ्वी पर साधुओं में श्रेष्ठ समझना चाहिए। अन्यथा उपकार का स्मरण कर, भविष्य में कुछ और लाभ करने की आशा से, खल लोग भी उपकार करनेवाले के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।"

गिरीश ने कहा—"उँः उसके साथ जो कुछ उपकार किया गया, वह कहने की जरूरत नहीं।"

सतीश ने कहा—"उपकार! उपकार और कैसा होता है? आपने ऐसे समय में उसे रुपया उधार दिया जब वह बड़ी विपत्ति में था। आप यदि सहायता न करते तो उसकी सब सम्पत्ति—घर, ज़मीन इत्यादि-सरकार नीलाम करा लेती और वह भूखों मरता। मैं सब जानता हूं। उन सब उपकारों का बदला उसने जो दिया वह भी जानता हूं। कहा भी है—"पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम्"—साँप को दूध पिलाने से विष ही बढ़ता है और वह किसी समय अपने ही प्राण का घातक होता है। इसी तरह दुष्टों का स्वभाव भी समझना चाहिए।"

गिरीश ने कहा—"यह कहना कठिन है कि मैं दुष्ट हूं अथवा वह था। जो हो, अब वह मर गया, इस लिए उसके सम्बन्ध में कुछ कहना व्यर्थ है। अच्छा तो उस मकान को गिरवाकर फिर से नया बनवाने की तुम्हारी राय है?"

"जीहां।"

"अच्छी बात है। मगर अभी यह बात किसी से कहना नहीं। मकान बनवाता हूं, क्या करूंगा, क्या नहीं, यह किसी को मालूम न हो। समझे!"

"बहुत अच्छा। किसी से भी नहीं कहूंगा।" इतना कह-कर सतीश बड़ी देर तक गिरीश की प्रशंसा करता रहा। फिर दोबारा चरणस्पर्श कर वह उस रात को वहां से विदा हुआ।

चन्द्रगढ़ की चिट्ठी

तीन वर्ष वीत गये ।

पूस का महीना है । कलकत्ते की हरिघोष-गली में एक दो-ंजिला मकान है । इसी मकान के एक खुले हुए कमरे में कई त्रियां बैठी हुई हैं, जिन में एक स्थूल वदन की प्रौढ़ा स्त्री अपने ाल सुखा रही है । इस स्त्री के पास ही एक नौजवान स्त्री ठी है । वह चैतन्य-लाइब्रेरी से आये हुए एक उपन्यास को ढ़कर सब को सुना रही है ।

गली में फेरीवाले ने आवाज़ दी—"कमीज़, कोट, अच्छे-च्छे कोट !"

इसी समय आठ-दस वर्ष की एक लड़की दूसरे कमरे से ौड़ती हुई आकर बोली—"चाचीजी, कमीज़वाले को ुलाऊं ?"

प्रौढ़ा स्त्री इस घर की मालकिन है। पुस्तक पढ़नेवाली सकी छोटी लड़की—कमला—है, जिसके वाल-बचा होनेवाला ै। इसलिए थोड़े दिनों के लिए वह ससुराल से आई है। कमीज़वाले की सूचना देनेवाली वालिका प्रौढ़ा स्त्री के देवर की लड़की है । यह भी पश्चिम से आई है । वाकी अन्य स्त्रियां

पड़ोस की रहनेवाली हैं। कभी-कभी यहां आया करती हैं।

मालकिन ने कहा—"सुनो, कहानी सुनो। कमीज़ें फिर खरीदना।"

बालिका ने कहा—"चाचीजी, कमीज़ें अच्छी अच्छी हैं। क्यों दीदी?"

दीदी ने उसकी ओर देखकर मुसकराते हुए कहा—"अरी इन्दु, तुझे कमीज़ों की कौनसा जरूरत है?"

मालकिन ने कहा—"यह तो जो सुनेगी वही चीज़ लेगी। तुम पढ़ो बेटी। इन्दू, तू जा, मेरा पान का डब्बा और तमाखू की डिबिया तो ले आ।"

बालिका ने उदास होकर आज्ञा का पालन किया। मालकिन ने दो पान लेकर डिब्बा पड़ोसिनों की तरफ खिसका दिया। फिर जर्दा की डिबिया खोलकर कहा—"अरे, यह तो बहुत थोड़ा रह गया। अभी उस दिन आठ आने का मँगाया था। इतनी जल्दी ख़तम होगया! ज़रूर इसमें से लेकर कोई खाता है। क्यों कमला, तू खाती है क्या?"

कमला ने कहा—"नहीं मां, मैं भला क्यों खाऊंगी? इसके खाने से मुझे चक्कर आने लगता है।"

मां ने हँसकर कहा—"चक्कर आने लगता है? बिना खाये कैसे जाना कि चक्कर आने लगता है?"

कमला नें हँसकर कहा—"एक दिन खाकर देखा था। सिर में दर्द होने लगा, शरीर में जलन पैदा होगई और रह-रह-

कर चक्कर आने लगा।"

"ऐसा क्यों किया बेटी! मेरे पिता के घर सभी गोश्त खाते हैं, इसी से मेरी भी यह बुरी आदत पड़गई! यहां मैं जब पहले पहल आई तो कोफ़्ता खाना शुरू किया। सभी कहने लगे, छिः छिः, कोफ़्ता खाती हो! इसके बाद ज़र्दा खाने लगी। तू जिस साल पैदा हुई थी उसी साल पहले पहल उन्होंने ज़र्दा लाकर मुझे खिलाया था। अब बिना खाये रहा नहीं जाता। ख़बरदार! तू मत खाना। यह विष है!" यह कहते कहते थोड़ा सा ज़र्दा लेकर मालकिन ने अपने मुँह में डाल लिया! और डिबिया पड़ोसिनों की ओर खिसका दी।

कमला बोली—"सुनती हूं, इसके खाने से दांत मज़बूत हो जाते हैं।"

मालकिन ने कहा—"दांत नहीं, कहनेवाले का सिर मज-बूत हो जाता है! दांत यदि मजबूत होते तो मेरे दो दांत क्यों गिर जाते! दांत-वांत मजबूत तो होते नहीं; बल्कि उलटे 'हार्ट' ख़राब हो जाता है।"

कमला ने पूछा—"हार्ट क्या?"

पड़ोस की एक स्त्री ने कहा—"अरी, 'हार्ट' नहीं जानती? आज-कल तो कितने ही आदमियों का हार्ट ख़राब हुआ करता है।"

मालकिन ने कहा—"हार्ट ख़राब होने से आदमी यह तक

जाता है। मनुष्य की छाती के भीतर हार्ट होता है। वही खराब हो जाता है। उं:, अरी इसे जाने दे, तू पढ़। उसके बाद क्या हुआ? मैं तो भूल ही गई, कहां तक पढ़ाया था?" इतना कहकर उन्होंने फिर थोड़ा सा ज़र्दा लेकर मुँह में डाल लिया!

एक पड़ोसिन बोली— "नवाब ने कहा, यदि मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरी बेटी इस ग़रीब के साथ विवाह करेगी तो फिर वह इस घर में न रह सकेगी। मैं फिर इस जन्म में उसका मुँह न देखूंगा। नवाब नन्दिनी इस बात को सुनकर मूर्च्छित हो गई,—यहां तक हुआ था।"

मालकिन ने कहा—"इसके बाद?"

कमला ने पुस्तक उठाकर फिर पढ़ना शुरू किया।

इस प्रकार लगभग एक घण्टे तक पुस्तक पढ़ी गई। धीरे-धीरे सूर्यदेव अस्ताचल की ओर जाने लगे। फिर एक ऊंची अट्टालिका की ओट में छिप गये। कमला ने जहां तक उपन्यास पढ़ा, यही वर्णन था कि—"घर से निकाली हुई बेचारी नवाब की लड़की अब अपने स्वामी के साथ फटे-पुराने कपड़े पहनकर एक मामूली झोपड़ी में रहती है। उसका पति थोड़ी तनखाह पर नौकरी करता है। सारा दिन परिश्रम कर जब वह शाम को लौटता है, लड़की उसके लिए नमाज़ पढ़ने को 'उजू' का पानी रखती है; और स्वयं अपने हाथों से रोटी बनाती है।" उपन्यास के इस अंश को सुनकर

लकिन सोचने लगी, दफ़्तर से उसके स्वामी के भी आने का
य हो गया; पर अभी तक उनके जलपान का बन्दोबस्त नहीं
या गया। वह बोली—"बस बेटी, अब रहने दो। कहारिन
ी तक नहीं आई। बड़ी दुष्टा है। शाम हो गई; किन्तु घर
में बैठी है। कब बर्त्तन माँजे जायँगे, कब भोजन बनेगा!"
ना कहकर वह उठने की चेष्टा करने लगी; पर उठा न गया।
र तो स्थूल था ही, उस पर पैरों में वात का रोग! इसलिए
वार बैठकर उठना कठिन था। कन्या की सहायता से ज्यों
करके उठी। पड़ोसिनें भी अपने अपने घर चली गईं।

घर के मालिक दफ़्तर से आकर चाय पी रहे हैं। इनका
म यदुनाथ गंगोली है। तारकेश्वर के पास हरिपाल नामक
व के रहनेवाले हैं। इनकी उम्र छप्पन-सत्तावन वर्ष की
गी। मेकनिन मेकेंज़ी के दफ़्तर में नौकर हैं। इनके चार
यायें हैं। सब का विवाह हो चुका है। कमला को छोड़कर
र तीनों अपनी अपनी ससुराल में हैं।

अस्तु। यदुबाबू एक छोटी सी टेबुल के सामने कुर्सी पर
े चाय पी रहे हैं। घर की मालकिन—उनकी स्त्री—पास
एक नेवाड़ के पलँग पर बैठी पान चबा रही हैं। पति
चुप देखकर बोलीं—"क्यों आज क्या तबियत अच्छी
हीं है?"

यदुबाबू ने कहा—"नहीं, तबियत तो अच्छी है।"

"फिर इस तरह चुपचाप क्या सोच रहे हो?"

चुपचाप जो कुछ सोचता हूं, वह अभी बतलाता हूं। बात यह है कि आज दफ़्तर में एक चिट्ठी मिली है। उसी के विषय में सोचता हूं। क्या करना चाहिए, कुछ निश्चय नहीं कर पाता।"

मालकिन ने घबड़ाकर पूछा—"चिट्ठी! किसकी चिट्ठी? कुशल तो है?"

यदुबाबू ने कहा—"सब कुशल ही है।"

"सब कुशल ही है—कहने का क्या मतलब? कहां से चिट्ठी आई है?"

"चन्द्रगढ़ से।"

"विशू की चिट्ठी है क्या? सब अच्छी तरह तो हैं?"

विशू, अर्थात् विश्वेश्वर भट्टाचार्य, यदुबाबू के ममेरे भाई हैं। बहुत दिनों से चन्द्रगढ़ में नौकर हैं।

यदुबाबू ने कहा—"हां, सब लोग अच्छी तरह से उसने एक बात लिखी है, उसी को सोचता हूं, क्या चाहिए? ठहरो, चाय पी लूं, फिर तुम्हें चिट्ठी सुनाऊं।"

मालकिन शङ्कित नेत्रों से उनकी ओर देखने लगीं। वे फिर चाय पीने लगे। चाय पी चुकने पर उन्होंने टँगी हुई सर्ज की अचकन की जेब से चिट्ठी निकाला।

दासी ने आकर हुक्का रख दिया।

टा प्याला ले गई। इन्दू ने आकर पान दिये। यदुबाबू
बोले—"दरवाज़ा अच्छी तरह बन्द कर दे। बड़ी सर्दी है। तेरी
माँ कहाँ है? रसोईघर में?"

इन्दू ने कहा—"हाँ।"

"और दीदी?"

"दीदी भी वहीं बैठी कुछ कूट रही है।"

"तू भी जाकर वहीं बैठ। तुझे सर्दी नहीं लगती?"

"बालिका दरवाज़ा बंद कर चली गई।"

यदुबाबू कुर्सी मालकिन के पलँग के पास खींच ले गये;
और चश्मा लगाकर धीरे-धीरे चिट्ठी पढ़ना शुरू किया।

चन्द्रगढ़,

बक्सर (ई० आई० आर०)

पूज्यवर, १५ अक्टूबर, सन् १९२९

बहुत दिनों से आपका समाचार नहीं मिला। चित्त में
चिन्ता हो रही है। जल्दी से कुशल-समाचार भेजकर मेरी
चिन्ता दूर कीजिए।

यहाँ आप के चरणों की कृपा से हम सब अच्छी तरह से
हैं। इस बीच में छोटी लड़की को ज्वर हो आया था; पर अब
वह किसी कदर अच्छी है। रात में अभी खांसी आती है। एलो-
पैथिक से फायदा न होने पर अब होमियो-पैथिक दवा
हो रही है।

यह पत्र आपको एक विशेष कारण से लिख रहा हूं। गत

वर्ष जब मैं कलकत्ते आया था, आपने कहा था कि भाभी के शरीर की दशा अच्छी नहीं रहती। गृहस्थी के काम-काज करने में बड़ी तकलीफ हुआ करती है। लड़कियां अपनी अपनी ससुराल चली गईं। यदि दो दिन के लिए भी मालकिन की तबियत खराब हो जाती है तो पानी देनेवाला तक कोई नहीं रहता। आपने यह इच्छा प्रकट की थी कि यदि कोई अनाथ ब्राह्मण-कन्या मिल जाय तो आप उसे मालकिन की सेवा-शुश्रूषा के लिए नौकर रख लेंगे। अस्तु। यहां एक ऐसी ही ब्राह्मण-कन्या है। उसका पूरा हाल लिखता हूं। यदि आप मुनासिब समझें तो उसे आपकी सेवा में भेज दूं।

तीन वर्ष से अधिक हुआ, राजकुमार चट्टोपाध्याय नामक एक युवक यहां नौकर हो कर आया। उसके साथ में उसकी स्त्री और सास भी थी। सुना है, नौकर होने से कुछ ही दिन पहले उसका विवाह त्रिवेणी नामक गांव में हुआ था। उसके श्वसुर का नाम जगदीश वन्द्योपाध्याय था। राजकुमार के आने के दो महीने बाद समाचार मिला कि जगदीश की ज्वर से मृत्यु होगई। देश में उनका आत्मीय और कोई नहीं था। केवल राजकुमार का साला कलकत्ते में पढ़ता था। गांव में श्राद्धादि करना बड़ा कठिन था। विशेषतया राजकुमार की नई नौकरी के कारण छुट्टी मिलना असम्भव था। इसलिए यही ठीक समझा गया कि राजकुमार के साले—श्रीहरिपद वन्द्योपाध्याय—को यहीं बुलाकर, दरबार की सहायता से, श्राद्धादि की क्रिया करा

जाय। निदान ऐसा ही हुआ।

मसल मशहूर है, "विपत्ति अकेले कभी नहीं आती।" ...दों में बेचारी कन्या के पिता—जगदीश बन्द्योपाध्याय—मरे, ...गाम में राजकुमार को हैज़ा हो गया। यहां बड़े बड़े डाक्टर, वैद्य नहीं हैं, फिर भी खूब चेष्टा की गई। किन्तु जिसका समय पूरा हो जाता है उसे कोई नहीं बचा सकता। राजकुमार किसी प्रकार नहीं बचा। उस समय कन्या और उसकी माँ के साथ हम तीन-चार बंगाली, जो यहां हैं, जैसी विपत्ति में पड़े, लिख नहीं सकता। बालिका के भाई को तार देकर बुलाया गया। सब हाल सुनकर राजाबहादुर ने उस समय हरिपद को राजकुमार की जगह पर मुकर्रर कर दिया। अन्यथा बेचारों को भीख माँगनी पड़ती। घर में कहती थी कि लड़की का नाम प्रभावती है। पति-वियोग होने के समय उसे पांच महीने का गर्भ था।

हरिपद नौकरी करके माता और बहिन का पालन-पोषण करने लगा। कार्तिक में प्रभावती के पुत्र उत्पन्न हुआ। इससे परिवार को कुछ शान्त्वना मिली।

पिछले दिनों हरिपद बाबू को चेचक निकली। विषम ज्वर के साथ चेचक ने भीषण रूप धारण किया। चौथे दिन उनकी माता की भी यही दशा हो गई। सातवें दिन हरिपद ने इस संसार को त्याग दिया। माता को भी बहुत दिनों तक पुत्रशोक सहना न पड़ा। तीसरे दिन उसने भी शरीर त्याग दिया।

अब आप स्वयं समझ सकते हैं, अभागिनी प्रभावती की क्या दशा है! माता के मरने पर उसे मैं अपने घर ले आया हूं। तब से वह यहीं है। अब इस संसार में उसका कोई भी नहीं। उसके गांववालों को ख़बर दी थी कि यदि कोई उसकी दशा पर द्रवीभूत होकर उसे आश्रय दे सके, तो बड़ी अच्छी बात हो। किन्तु किसी ने यह उत्तरदायित्व लेना स्वीकार न किया।

मेरी पारिवारिक अवस्था जैसी कुछ है, आप जानते ही हैं। अतएव अधिक समय तक इस लड़की को मैं अपने यहां रख नहीं सकता। इसी लिए आपको यह पत्र लिख रहा हूं। यदि आप इसे आश्रय दें तो भाभी को किसी प्रकार का कष्ट न होगा। ईश्वर की कृपा से आपको किसी बात की कमी नहीं है।

मैं बराबर देखता हूँ, तथा घर में भी सुनता हूं कि प्रभा का स्वभाव बहुत ही साधा-सादा है। गृहकार्य, भोजनादि सभीकामों में वह अत्यन्त चतुर और निपुण है। किसी बात में त्रुटि नहीं दिखाई पड़ती। सर्वगुण-सम्पन्न होने पर भी भगवान ने क्यों उसे इतना कष्ट दिया, यह समझना कठिन है। इसीलिए कहना पड़ता है, कि यह उसके पूर्वजन्म के कर्मों का फल है।

भाभी से सलाह कर, जो निश्चय हो शीघ्र लिखिएगा। मैंने एक महीने की छुट्टी ली है। यदि आप लिखें तो घर जाते

समय उसे आपके यहाँ छोड़ता जाऊं। किमधिकम्।

आपकी और भाभी की तबियत कैसी रहती है, शीघ्र लिखियेगा।

आपका

विश्वेश्वर भट्टाचार्य।

मालकिन चुपचाप चिट्ठी सुन रही थीं। करुणा से उनके नेत्रों में आंसू भर आये। चिट्ठी समाप्त होने पर उन्होंने एक बड़ी ठण्डी सांस ली।

यदुबाबू ने चिट्ठी रखकर हुक्का पीते पीते पूछा—"तुम्हारी क्या राय है?"

मालकिन ने कहा—"मैं क्या कहूं? जो ठीक समझो, करो।"

"मेरी राय में उसे बुला लेना अच्छा है। तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। तुम्हारे शरीर की जैसी दशा है, एक आदमी का तुम्हारे पास रहना बहुत ज़रूरी है। कमला के बच्चा होनेवाला है। किस महीने में होगा?"

"चैत में।"

"उस समय तो इन्दु की मां भी चली जायगी। माघ ही में सुरेन्द्र आकर उसे ले जायगा। तब तुम अकेले क्या कर सकोगी? सब काम सम्हाल लोगी?"

पति-पत्नी में बहुत देर तक बातचीत होती रही। पत्नी कहती, विधवा की अवस्था बहुत कम है। यदि किसी प्रकार

पर गये। दरवाजे पर आवाज़ दी—"दादा, भट्टाचार्य दादा,—घर पर हैं ?"

भट्टाचार्यजी के भतीजे ने आकर कहा—"वह घर में नहीं हैं। बाज़ार गये हैं।"

गिरीश बाज़ार की ओर चले। कुछ दूर जाकर माधव चक्रवर्ती के मकान के पास पहुँचे। रास्ते से देखा, उसका बैठका खुला हुआ है। धीरे-धीरे वह उसी ओर चल दिये। कमरे में जाकर देखा, ऐसी गर्मी में भी माधव फलालैन का कोट पहने—चाय पी रहा है! सर्दी से बेचारा परेशान है न! इसी से!

गिरीश बाबू को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ। कहने लगा—"प्रलाव, प्रलाव। आइए, आइए।"

गिरीश ने हँसकर कहा—"गर्मी में फलालैन का कोट! उस पर चाय का पीना! जान पड़ता है, सर्दी फिर बढ़ गई है!"

माधव ने उन्हें चौकी पर बैठाकर कहा—"अब कुछ न कहिए। एक दिल रात को बहुत गर्वी थी, इससे दरवाज़े का जगला खोलकर सोया था। रात वे किस सवय पाली वरसले लगा, कुछ पता भी लहीं चला। तभी से सर्द हवा लग गई। उसी दिल से सर्दी पीछा लहीं छोलती। क्या करूं ? कुछ वताइए।"

गिरीश ने कहा—"सब अच्छी हो जायगी। मामूली सर्दी है। कहिए, और सब तो कुशल है ?"

"हां भाई, आपके घर के तो सब लोग अच्छे हैं ?"

"हां,सब अच्छी तरह हैं। दोनों लड़के कालेज की छुट्टी होने से आज-कल घर आये हुए हैं। अच्छा माधव, तुम्हें याद है, लगभग साल भर हुआ, तुमने कहा था कि नरेन्द्र, सुरेन्द्र की अब शादी कर डालो।"

माधव ने कहा—"हां, याद तो है। क्या कहीं सम्बन्ध ठीक किया ?"

"हां, ठीक किया है। यदि ईश्वर ने चाहा तो इस महीने के अन्त तक यह शुभ कार्य हो जायगा।"

"बहुत अच्छा किया। कहां ठीक हुआ ?"

खलसिनी में ठीक हुआ है। खलसिनी के सर्वेश्वर गंगोली का नाम तो सुना ही होगा। अब तो वह इस संसार में नहीं हैं। उनके दो लड़के हैं। दोनों ही बड़े मजे में हैं। उनमें जो बड़े हैं, घर ही पर रहते हैं; और अपनी ज़मीन्दारी का काम देखते हैं। छोटे भाई बक्सर में मुन्सिफ़ हैं। बड़े भाई की लड़की के साथ नरेन्द्र और छोटे की लड़की के साथ सुरेन्द्र का विवाह होना ठीक हुआ है।"

"कन्यायें दोनों देखी हैं ? पसन्द हुईं या नहीं ?"

"हां, दोनों को देखा है। दोनों ही बड़ी सुन्दर हैं। उन लोगों ने भी कलकत्ते जाकर दोनों लड़कों को देख लिया है। सब बात ठीक हो गई है। आज शाम की गाड़ी से वे लोग आकर तिलक करेंगे। इसी लिए तुम्हारे पास आया हूं। तुम

ठीक समय से आ जाना, जिससे कोई कार्य बिगड़ने न पाये। रात में भोजन इत्यादि करके फिर चले आना।"

माधव ने कहा—"बहुत ठीक। दादा, यह तो बले आलन्द की बात सुलाई। वै लिश्चय ही आऊगा। तिलक करले कौल आवेगा?"

"जान पड़ता है, दोनों भाई आयेंगे। छोटे भाई ने, जो बक्सर में मुन्सिफ़ हैं, कन्या के विवाह के लिए छुट्टी ली है। अच्छा, अब चलता हूं। देखो, भूलना नहीं।"

माधव ने कहा—"अले क्यों यह भूलले की बात है! आप जाते हैं? अच्छा, प्रलाव।"

वहां से निकलकर गिरीश महाशय बाज़ार की ओर रवाना हुए। कुछ ही दूर गये होंगे कि राह में एक अँगौछे में कुछ सामान बांधे भट्टाचार्यजी आते हुए दिखाई पड़े। उन्होंने पूछा, "क्यों गिरीश, कहां जा रहे हो?"

"आप ही की खोज में जा रहा था। प्रणाम। आप के मकान पर जाने से मालूम हुआ, आप बाज़ार गये हैं। बस इसीसे इधर—"

भट्टाचार्यजी ने पूछा—"क्यों, कुछ काम था?"

'खलसिनी से वह लोग आज आकर तिलक करेंगे। उसी का मुहूर्त निश्चित कर दीजिए।"

"तिलक का दूसरा मुहूर्त और कौन सा होगा! शाम को वह आयेंगे ही—सब, थोड़ी देर बाद गोधूलि लग्न में ठीक रहेगा।"

"हाँ, सो तो ठीक है; किन्तु आप से बिना पूछे—"

"ठीक है। आपने अपना कर्तव्य-पालन किया। मैं आपका पुरोहित हूँ। इसलिए मुझ से पूछना ही चाहिए। अच्छा, यह तो बताइए, अवसर से मुन्सिफ़ साहब भी आयेंगे?"

"हाँ, वह भी शायद आयेंगे। आप अपना पोथी-पत्रा लेते आइएगा, क्योंकि आज ही विवाह का दिन भी निश्चित करना होगा। यदि इसी महीने में हो जाय तो बड़ा अच्छा हो।"

बातचीत करते करते दोनों ही सतीश के मकान के पास पहुँच गये। सतीश ने दोनों को देखते ही प्रणाम किया।

दोनों ने देखा, सतीशचन्द्र बैठके के बाहर बराण्डे में हुक्का लिये खड़ा है।

सतीश ने कहा—"आइए, आइए। तमाखू तैयार है। पीते जाइए।"

सतीश के अनुरोध करने पर दोनों ही बराण्डे में जाकर खड़े होगये। सतीश झटपट भीतर से एक चटाई ले आया; और उस पर दोनों व्यक्तियों को बड़े आदर से बिठाकर स्वयं चिलम भरने लगा।

भट्टाचार्यजी ने कहा—"सतीश, तुम्हें बहुत श्लोक याद हैं। कोई श्लोक तमाखू पर तो सुनाओ।"

सतीश ने कहा—"आपने कमाल किया! भला मैं आपको

ठीक समय से आ जाना, जिससे कोई कार्य बिगड़ने न पाये रात में भोजन इत्यादि करके फिर चले आना।"

माधव ने कहा—"वहुत ठीक। दादा, यह तो वले आलन्द की वात सुलाई। वे लिश्चय ही आऊगा। तिलक करले कौल आवेगा?"

"जान पड़ता है, दोनों भाई आयेंगे। छोटे भाई ने, जो वक्सर में मुन्सिफ़ हैं, कन्या के विवाह के लिए छुट्टी ली है। अच्छा, अब चलता हूं। देखो, भूलना नहीं।"

माधव ने कहा—"अले क्यों यह भूलले की वात है! आप जाते हैं? अच्छा, प्रलाव।"

वहां से निकलकर गिरीश महाशय बाज़ार की ओर रवाना हुए। कुछ ही दूर गये होंगे कि राह में एक अँगौछे में कुछ सामान वांधे भट्टाचार्यजी आते हुए दिखाई पड़े। उन्होंने पूछा, "क्यों गिरीश, कहां जा रहे हो?"

"आप ही की खोज में जा रहा था। प्रणाम। आप के मकान पर जाने से मालूम हुआ, आप बाज़ार गये हैं। बस इसीसे इधर—"

भट्टाचार्यजी ने पूछा—"क्यों, कुछ काम था?"

'खलासिनी से वह लोग आज आकर तिलक करेंगे। उसी का मुहूर्त निश्चित कर दीजिए।"

"तिलक का दूसरा मुहूर्त और कौन सा होगा! शाम को वह आयेंगे ही—सब, थोड़ी देर वाद गोधूलि लग्न में ठीक रहेगा।"

"हाँ, सो तो ठीक है; किन्तु आप से बिना पूछे—"

"ठीक है। आपने अपना कर्तव्य-पालन किया। मैं आपका पुरोहित हूं। इसलिए मुझ से पूछना ही चाहिए। अच्छा, यह तो बताइए, अवसर से मुन्सिफ़ साहब भी आयेंगे?"

"हाँ, वह भी शायद आयेंगे। आप अपना पोथी-पत्रा लेते आइएगा; क्योंकि आज ही विवाह का दिन भी निश्चित करना होगा। यदि इसी महीने में हो जाय तो बड़ा अच्छा हो।"

बातचीत करते करते दोनों ही सतीश के मकान के पास पहुँच गये। सतीश ने दोनों को देखते ही प्रणाम किया।

दोनों ने देखा, सतीशदत्त बैठके के बाहर बराण्डे में हुक्का लिये खड़ा है।

सतीश ने कहा—"आइए, आइए। तमाखू तैयार है। पीते जाइए।"

सतीश के अनुरोध करने पर दोनों ही बराण्डे में जाकर खड़े होगये। सतीश झटपट भीतर से एक चटाई ले आया; और उस पर दोनों व्यक्तियों को बड़े आदर से बिठाकर स्वयं चिलम भरने लगा।

भट्टाचार्यजी ने कहा—"सतीश, तुम्हें बहुत श्लोक याद हैं। कोई श्लोक तमाखू पर तो सुनाओ।"

सतीश ने कहा—"आपने कमाल किया! भला मैं आपको

"विड़ौजा कहिए इन्द्र ने, पद्मयोनि अर्थात् ब्रह्मा से किसी समय पूछा, इस संसार में सारवस्तु कौन सी है ? हां सतीश, जरा ठहरो, गिरीश के इसकी व्यञ्जना समझा दूं। इन्द्र ने ब्रह्मा से पूछा, देवताओं के गुरु बृहस्पति से क्यों नहीं पूछा ? अग्नि, वरुण, पवन इत्यादि सभी तो पृथ्वी पर बराबर आते-जाते हैं— उन सब के छोड़कर ब्रह्मा ही से उन्होंने क्यों पूछा ? क्यों गिरीश, बतलाओ तो !"

गिरीश बैठे तमाखू का इन्तज़ार कर रहे थे। इस प्रश्न का उत्तर कुछ भी न दे सके। यह देख भट्टाचार्यजी बोले—"अरे गिरीश, तुम यह भी नहीं समझे। देखो, ब्रह्मा ही ने सृष्टि रची है। वह भली भांति जानते हैं, कौन वस्तु कैसी है। यदि वह न बता सकेंगे तो क्या रामा-श्यामा इस बात के बता सकेंगे। अच्छा सतीश, उसके आगे कहो—हां, चतुर्मुखी ब्रह्मा ने तुरन्त उत्तर दिया—तमाखू, तमाखू, तमाखू, तमाखू। चार बार कहने का क्या अभिप्राय ? ब्रह्मा ने चारों मुखों से चारों वेद कहे हैं न ? सो जैसे वेद सत्य हैं, उसी तरह यह बात भी सत्य है।"

गिरीश ने भट्टाचार्यजी के तमाखू की चिलम देकर कहा—"पीजिए।"

भट्टाचार्यजी तमाखू पीते-पीते बोले—"समझे, तमाखू ही इस संसार में एक मात्र सार वस्तु है।"

सतीश ने तमाखू के हाथ धोकर अँगौछे में पोंछते हुए

कहा—"गिरीश दादा, इस समय कैसे आये ?"

गिरीश ने कहा—"तुम्हें निमंत्रण देने आया हूं।"

"निमंत्रण ! किस दिन के लिए ?"

"आज तीसरे पहर आ जाना, रात में दावत होगी।"

सतीश ने हँसकर कहा—"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा किन्तु यह तो कहिए, मामला क्या है ?"

भट्टाचार्यजी ने कहा—"नृत्यन्ति भोजने विप्रः। कि सतीश, क्या तुम ब्राह्मण हो जो भोजन का नाम सुनते ही मग्न होगये ?"

सतीश ने कहा—"क्यों भट्टाचार्य दादा, क्या ब्राह्मणों ही को भूक लगती है, कायस्थों को नहीं ?" * * * मैं कायस्थ भी नहीं; बालक क्षत्रिय हूं। इस जन्म में चाहे जो होऊं; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पिछले जन्म में ब्राह्मण था। यदि ऐसा न होता तो मुझे भोजन से इतनी प्री कैसे होती ? गिरीश दादा, यह तो बताओ, किस बात दावत है ?"

भट्टाचार्यजी ने कहा—"इतना घबड़ाये क्यों जाते हो ? अ तो आरम्भ ही है। कई दिनों तक माल चाबना। नरेन्द्रसुरे का विवाह होनेवाला है। आज शाम को तिलकोत्सव है।"

इसके बाद गिरीश ने विवाह-सम्बन्धी सारी बातें सती से कहीं। सतीश ने पूछा—"बक्सर ?—जहां से चन्द्र जाते हैं ?"

गिरीश ने कहा—"यह तो नहीं कह सकता कि वहां से चन्द्रगढ़ जाना होता है या सूर्यगढ़। अच्छा, तुम से कहे जाता हूं कि तुम साढ़े तीन या चार बजे आ जाना। शायद तुम्हें स्टेशन भी जाना पड़े।"

"बहुत अच्छा, चार बजे आ जाऊंगा।"

इतना बातचीत के बाद भट्टाचार्य और गिरीश मुखोपाध्याय वहां से विदा हुए।

मुन्सिफ़ साहब

दिन के तीसरे पहर गिरीश मुखोपाध्याय के बैठके में कईएक भले आदमी बैठे हैं। भट्टाचार्यजी, माधव चक्रवर्ती और मुहल्ले के नित्यानन्द राय, दुर्गादास अधिकारी, पूर्णचन्द्र मजूमदार इत्यादि प्राय: सभी सज्जन विराजमान हैं। सतीश भी बैठा है। उसे स्टेशन नहीं जाना पड़ा। गिरीश महाशय स्वयं गाड़ी लेकर दोनों भावी सम्बन्धियों के स्वागतार्थ स्टेशन गये हुए हैं।

आकाश में अब मेघ नहीं दिखाई पड़ते। सूर्य भगवान् अपनी तेज़ी से लोगों को व्याकुल कर रहे हैं। गर्मी के मारे सभी हाथों में पंखा लिये हैं। बैठके के पीछे बग़ीचा है, जिसमें

धियों के साथ नीचे उतरे। हाथ में चमड़े का बेग लिये बड़े ठाटबाट के साथ एक अर्दली भी कोच-बाक्स से उतरा।

दोनों समधियों को साथ लेकर गिरीश महाशय बैठके में आये। समधियों में से एक की उम्र चालिस वर्ष से अधिक, रंग सांवला और शरीर दुर्बल था। देखने से जान पड़ता था, इन्हें कभी-कभी मेलेरिया हो जाता है। दूसरे की उम्र चालिस वर्ष के भीतर ही थी। जेठे भाई की अपेक्षा इनका रंग गोरा और चेहरा गोल था।

जेठे भाई ने बैठके में घुसते ही दोनों हाथ जोड़कर कहा—"ब्राह्मणेभ्यो नमः।" सब लोग उठ खड़े हुए। गिरीश ने उन दोनों को बड़े आदर से बिठाया। बैठते ही छोटे भाई ने कहा—"बड़ी प्यास लगी है। एक गिलास पानी मँगाइए तो बड़ी कृपा हो।" सुनते ही सतीशदत्त और एक-दो लोग चिल्ला उठे—"पानी लाओ, पानी लाओ।"

गिरीश ने दोनों को सब लोगों का परिचय करा दिया। तदनंतर भट्टाचार्यजी उठकर उनके बिलकुल नजदीक आ बैठे; और बातचीत करने लगे। अन्य लोग जहां के तहां बैठे रहे।

धीरे-धीरे शाम हो गई। भट्टाचार्यजी ने कहा—"अब गोधूलि-लग्न आ गई है। शुभ कार्य हो जाना चाहिए।"

तिलक के निमित्त भीतर से एक चांदी की थाली में धूप, दीप, चन्दन इत्यादि सामग्री लाई गई। दोनों लड़के—नरेन्द्र-

तिथि आपने बतलाई ? दसमी और एकादशी ?"

"जी हां।"

कुछ देर तक पत्रा देखने के बाद भट्टाचार्यजी बोले—"हां, दिन तो दोनों अच्छे हैं। एकादशी को शनिवार है। यह तो बहुत अच्छा दिन नहीं है। फिर भी कुछ विशेष हानि नहीं है। 'न वारदोषःप्रभवन्ति रात्रौ विशेषतः भौम शनिश्चरार्कः'— गिरीश बोलो, तुम्हारी क्या राय है ?"

गिरीश राजी हो गये। दिन निश्चित हो गया।

मुन्सिफ़ साहब के बड़े भाई ने कहा—"अब भी पन्द्रह-सोलह दिन बाकी हैं। सब ठीक हो जायगा। अच्छा यह बताइए, आप किस दिन, किस गाड़ी से, बरात लेकर यहां से रवाना होंगे ?"

सब बातें निश्चित हो जाने पर मुन्सिफ़ साहब के बड़े भाई ने उठते हुए कहा—"अच्छा, अब आज्ञा हो—"

गिरीश ने कहा—"भला कुछ जलपान तो कर लीजिए।"

उन्होंने कहा—"पौने नौ बजे गाड़ी छूटती है। कहीं देर न हो जाय।"

सतीशदत्त ने कहा—"अजी देर कैसे होगी। अभी सात बजा है। डेढ़ घण्टे की देर है। ठीक समय से स्टेशन पहुँचा दूंगा।"

मुन्सिफ़ साहब के दादा ने कहा—"हां भाई, गाड़ी छूटने न पाये।"

गिरीश महाशय ने भीतर जाकर जलपान की सामग्री

जल्दी से तैयार करने की आज्ञा दी। उनके बाहर आने पर सतीश ने धीरे से पूछा—"कितनी देर है?" गिरीश ने जवाब दिया—"आध घण्टे के भीतर ही सब तैयार हो जायगा।"

मुन्सिफ़ साहब इन लोगों से कुछ दूर पर बैठे थे। उनके बिलकुल नजदीक भट्टाचार्यजी तथा नित्यानन्द राय थे। बातों ही बातों में इन लोगों से मुन्सिफ़ साहब ने पूछा—"आप लोग हरिपद बाबू को जानते हैं?"

गिरीश और सतीश भौचक्के होकर उनकी ओर देखने लगे।

नित्यानन्द राय ने पूछा—"कौन हरिपद? किसका लड़का? यह बताइए तो कुछ कह सकूं।"

मुन्सिफ़ साहब बोले—"किसका लड़का, यह तो नहीं कह सकता। हरिपद बन्द्योपाध्याय इसी गांव के रहनेवाले हैं। उनके बहनोई का नाम राजकुमार चट्टोपाध्याय था। चन्द्रगढ़ राज्य में वह नौकर थे।"

"गिरीश के कान खड़े हो गये।"

भट्टाचार्यजी बोल उठे—"हां-हां, समझ गया। जगदीश का लड़का हरिपद। बाबूपाड़े में उसका घर था। क्यों मुन्सिफ़ साहब, हरिपद को क्या हुआ?"

मुन्सिफ साहब ने कहा—"हरिपद को कुछ भी नहीं हुआ। लगभग एक महीना हुआ, उसका वही बहनोई मर गया। सुना, अभी हाल ही में उसका विवाह हुआ था।"

सब लोगों ने "अरे, यह क्या, हाय, हाय !" कहकर शोक प्रकट किया। थोड़ी देर के लिए वहां सन्नाटा छा गया।

सतीश ने पूछा—"वह मर गया, यह आपने कहां सुना ?"

मुन्सिफ साहब कहने लगे—"भाई, यह तो बड़ी लम्बी कहानी है। एक महीना हुआ होगा, मैं सरकारी काम से चन्द्रगढ़ गया था। रास्ते में तीन-चार दिन लगते हैं। इसीसे किराये की गाड़ी कर ली थी। जिस दिन वहां जा रहा था, एकाएक हरिपद मेरे पास आया। अपना परिचय देकर उसने कहा, मैं भी चन्द्रगढ़ जाना चाहता हूं। किन्तु गाड़ी नहीं मिलती। आपको चन्द्रगढ़ की ओर जाते देख आपके पास आया हूं। यदि आप मुझे अपनी गाड़ी के कोचबाक्स पर बैठने की आज्ञा दें तो महान् कृपा होगी। मैं बड़ी विपत्ति में हूं।" उसका चेहरा देख मुझे बड़ी दया लगी। मैंने उसका सारा हाल पूछा। उसने मुझे एक तार दिखाया। उसमें लिखा था—"तुम्हारे बहनोई हैजा से मर गये, शीघ्र आओ।" तार पढ़कर मैं उसके मुहँ की ओर देखने लगा। बेचारे की आखों से आसू गिर रहे थे। मैंने अपने यहां उसे स्नान, भोजन इत्यादि कराकर गाड़ी पर बिठा लिया। रास्ते में उसने अपना सारा वृत्तान्त कहा। सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ।"

पूर्णचन्द्र मजूमदार ने पूछा—"उसने क्या कहा ?"

मुन्सिफ साहब फिर कहने लगे—"उसने कहा, राजकुमार

से विवाह होने के पहले उसकी बहिन का विवाह एक बूढ़े के साथ इसी गांव में होनेवाला था। विवाह एक प्रकार से पक्का भी हो गया था; किन्तु उस (हरिपद) ने बीच में पड़कर राजकुमार के साथ बहिन का विवाह चुपचाप ठीक करा दिया जिस दिन विवाह हो रहा था, उस बूढ़े को न जाने कैसे ख़बर लग गई पागलों की तरह आकर उसने वहां पर अपना यज्ञोपवीत तोड़ते हुए यह शाप दिया— "तुमने ब्राह्मण को जिस तरह निराश किया है, उससे तुम्हारी कन्या वर्ष भर के भीतर ही विधवा हो जायगी।" आश्चर्य, महान् आश्चर्य, हरिपद ने बतलाया कि अक्षरशः ऐसा ही हुआ! एक वर्ष के भीतर ही उसकी बहिन विधवा हो गई। क्या आप लोगों ने यह बात नहीं सुनी? भाई, वह सर्वनाशी बुड्ढा अभी आप के गांव में है।"

बैठके में एकदम सन्नाटा हो गया। सुई गिरने तक का शब्द सुनाई पड़ सकता था।

सतीश ने गिरीश की ओर देखा। उनके मुहँ पर हवाइयां उड़ रहीं थीं। चेहरा फ़क हो गया था—सहसा सतीश बोल उठा, "गिरीश महाशय, अब आप देर क्यों करते हैं? जल्दी से इन्हें भोजन कराइए। भीतर जाकर ज़रा देखिए तो सही—इतना कहकर गिरीश का हाथ पकड़कर वह उन्हें भीतर ले गया।

कुछ मिनटों के बाद सतीश ने आकर कहा—"अब आप

लोगभीतर पधारिए। वहां सब तैयार है।"

सतीश सब को साथ लेकर भीतर गया। दालान में भोजन का बन्दोबस्त हुआ था। निमंत्रित लोग बैठकर भोजन करने लगे। नरेन्द्र, सुरेन्द्र, दोनों भाई इन लोगों के परोसने लगे। गिरीश महाशय कुछ देर के बाद आये; और सब की—विशेषतया सम्बन्धियों की—खातिर कर फिर भीतर चले गये।"

भोजन कर चुकने के बाद दोनों समधी स्टेशन जाने के लिए तैयार हुए। किराये की गाड़ी का इन्तिज़ार हो रहा था। मुन्सिफ़ साहब के बड़े भाई गिरीश महाशय के देखने लगे। सतीश ने कहा—"उनके सिर में बड़ा दर्द हो रहा था। ज़रा आंख लग गई है। क्या उन्हें बुला लाऊं?"

मुन्सिफ़ साहब के बड़े भाई ने कहा—"सिर में दर्द है? सो रहे हैं? रहने दीजिए, क्यों व्यर्थ में कष्ट दीजिएगा।" इतना कहकर उन्होंने सतीश का हाथ पकड़ लिया।

गांव के लोगों को गिरीश महाशय के सिरदर्द का कारण समझने में ज़रा भी कष्ट नहीं हुआ। वह तुरंत समझ गये।

सतीश ने कहा—"मैं आप लोगों के साथ स्टेशन चलने को तैयार हूं। चलिए, गाड़ी पर बिठा आऊं।"

मुन्सिफ़ साहब ने कहा—"नहीं, नहीं, कष्ट करने की आवश्यकता ही क्या है? हम लोग चले जायंगे।" यह कहकर उन्होंने भट्टाचार्यजी को प्रणाम किया; और कुछ दक्षिणा भी

दी। नौकरों को इनाम देकर उपस्थित व्यक्तियों से विदा मांगी; और अपने बड़े भाई के साथ वह गाड़ी में बैठ गये। गाड़ी चल दी।

अन्य लोग भी अपने अपने घर की ओर चल दिये। सतीश फिर भीतर जाकर, दो मंजिले पर, जहां गिरीश सो रहे थे, खड़ा हुआ। मेज पर लालटेन अपनी धीमी रोशनी उस कमरे में फैला रही थी। पलँग के पास जाकर उसने कहा—"दादा, वे लोग चले गये। चलते समय मैं आपको बुलाने आ रहा था; पर उन लोगों ने कहा, "रहने दो, कोई जरूरत नहीं है। उनकी तबीअत ख़राब है। क्यों कष्ट दोगे।"

गिरीश महाशय कुछ देर चुप रहने के बाद बोले—"सतीश, मेरे इन पापों का कौन सा प्रायश्चित्त है? हाय, मैंने अपने जीवन में बड़े बड़े पाप किये। मुझे नर्क में भी स्थान न मिलेगा।"

सतीश ने कहा—"दादा, आप ऐसा क्यों कहते हैं? आपने कौन सा पाप किया? यह सोचना आपका भ्रम है। ईश्वर जा चाहता है, वही होता है। हम-आप कर ही क्या सकते हैं? आप बुद्धिमान् होकर ऐसी अज्ञानता की बातें क्यों करते हैं? कुछ देर सो रहिए। सोने से सिर का दर्द जाता रहेगा। क्या आपने अभी अफ़ीम नहीं खाई?"

"नहीं, मुझे तो याद नहीं रही।"

सतीश ने कहा—"याद नहीं रही, इसी से तो सिर में

दर्द होने लगा। डिबिया कहाँ है? (ढूँढ़कर) लो. यह है।"

गिरीश चारपाई से उठकर बैठ गये। अफ़ीम खाने के बाद फिर लेट रहे। सिरहाने की तरफ सतीश बैठकर धीरे धीरे पंखा करने लगा।

प्रभा को आश्रय मिला

माघ के अभी तीन ही दिन बीते हैं। हरिघोष-स्ट्रीटवाले मकान में, सवेरे सातबजे, मेज़ के ऊपर एक तश्तरी में जलपान की कुछ सामग्री तथा एक प्याला गर्म-गर्म चाय रखे हुए यदुनाथ बाबू बैठे हैं। उन्होंने अपनी स्त्री से पूछा—"आज तुम्हारी कमर का दर्द कैसा है?"

स्त्री हाथ-मुहँ धोकर स्वामी के लिए पान लगाने बैठी थी। मकान में अन्य स्त्रियों के होते हुए भी स्वामी के लिए वह स्वयं पान लगाती हैं; क्योंकि यदुनाथ बाबू को और किसी के हाथ के पान अच्छे नहीं लगते। स्त्री ने स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—"आज तो कुछ कम है।"

स्वामी ने कहा—"मलहम ने फायदा किया। यह बहुत अच्छा है। एक ही दिन के लगाने से इतना फायदा हुआ।"

स्त्री ने कहा—"अभी क्या मालूम, दो दिन और देखना चाहिए। दर्द तो हमेशा ही घटा-बढ़ा करता है।"

स्वामी ने कहा—"नहीं, ईश्वर चाहेगा तो अब न बढ़ेगा। मलहम बहुत अच्छा है। इसकी तारीफ मैं सुन चुका हूं। दोपहर के समय धूप में बैठकर रोज़ इसकी मालिश कराया करो। भूलना नहीं। (कुछ देर सोचने के बाद) आज क्या माघ की तीज है?"

"स्त्री ने कहा—"हां।"

स्वामी—"आज साढ़े ग्यारह बजे की गाड़ी से विश्वेश्वर आते होंगे। याद है न?"

"हां, याद है। कल दूधवाली से कह दिया था-आज दो सेर दूध ज्यादा दे जाना।"

"अच्छा किया। विश्वेश्वर दो दिन से अधिक न ठहरेंगे, क्योंकि उन्हें एक ही महीने की छुट्टी मिली है।"

इसी समय कमला आगई। पिता की बात सुनकर उसने मां से पूछा—"क्यों मां, इस बार भी चाचाजी हम लोगों को थियेटर दिखाने ले चलेंगे?"

मां ने जवाब दिया—"मुझे क्या मालूम, मैं क्या ज्योतिष जानती हूं?"

कमला बोली—"उस बार जब आये थे तब तो मैं बिलकुल छोटी थी। किन्तु अब तो सयानी हुई। क्या अब कहते अच्छा लगेगा? तुम ही कह देना।"

स्त्री ने स्वामी के मुहँ की ओर देखकर कहा—"कमला की बात सुनी? यह तो बूढ़ी होती जाती है; और मैं दिन प्रति

दिन बालिका होती जाती हूं।"

स्वामी ने कहा—"नहीं, नहीं, थियेटर दिखाने के लिए तुम लोगों में से कोई मत कहना। इतने आदमियों को वहां ले जाने में टिकट का दाम, गाड़ी-भाड़ा इत्यादि में कुछ कम खर्च न होगा। बेचारे के ऊपर इतना ज़ुल्म करना ठीक नहीं।"

कमला बोली—"ज़ुल्म क्यों करूंगी! यदि चाचा या चाची ही स्वयं कहें तब!"

पिता ने कहा—"तब देखा जायगा। इस समय तुम एक काम करो। रज़ाई, दुलाई, तोशक, तकिया इत्यादि सभी चीज़ें बण्डल से खोलकर, नौकरानी से कहो, वह उन्हें धूप में डाल दे; क्योंकि विधू के लिए ओढ़ने-बिछाने की आवश्यकता पड़ेगी।"

कमला ने कहा—"जाती हूं। मां को एक प्याला चाय ला दूं।"

कमला की मां ने डिब्बे में पान भरकर स्वामी को दिया। और कन्या के हाथ से चाय का प्याला लेकर वह पीने लगी। पहले वह चाय नहीं पीती थी; किन्तु जब से यदुबाबू ने संस्कृत श्लोकों द्वारा उसे समझाया कि यह औषधि है, इसके पीने से वात, कफ़, इत्यादि ज़ोर नहीं करते, अथवा कम करते हैं, तब से वह बिना नहाये भी चाय पी लेती है।

चाय पीकर पान के साथ तमाखू मुंह में डालते हुए माल-किन (कमला की मां) ने कहा—"चलकर देखूं, भोजन में

कितनी देर है ?" (कुछ ठहरकर) क्योंजी, यह लड़की जो आ रही है, उसका नाम प्रभावती है न ? उसका रहन-सहन कैसा है ?"

यदुबाबू ने मुसकराकर कहा—"यह सब मुझे क्या मालूम, मैं क्या ज्योतिष जानता हूं ?"

स्त्री ने भी हँसकर कहा—"नहीं, आप ज्योतिष क्या जानें, ज्योतिष तो मैं पढ़ी हूं।"

स्वामी ने कहा—"लड़कपन में विधवा हुई है। विधवाओं की तरह रहती होगी।"

स्त्री बोली—"तो ठीक है। उसके लिए वैसा ही कुछ बन्दोबस्त हो जायगा।"

स्नान, भोजन कर चुकने के बाद यदुबाबू दफ़्तर चले गये।

कमला ने कहा—"मां, तुम स्नान कर पूजा इत्यादि से निपट लो, नहीं तो उन लोगों के आ जाने से फिर बहुत देर हो जायगी।" लड़की के कथनानुसार नहाने-धोने के लिए मां चली गई।

लगभग साढ़े बारह बजे दो गाड़ियां दरवाज़े के सामने आकर खड़ी हुईं। एक में विशू बाबू और उनके बच्चे थे। दूसरी में असबाब और औरतें थीं। विशू बाबू ने गाड़ी से नीचे आकर औरतों को उतारा। घर से आकर दासी ने बैठका खोल दिया; और विशू बाबू को उसमें बिठलाकर वह औरतों को भीतर लिवा ले गई।

विश्वेश्वर बाबू की स्त्री ने सब से पहले घर की मालकिन को प्रणाम किया। 'आओ, आओ' कहकर मालकिन ने एक स्थान पर सादर बिठलाकर पूछा—"रास्ते में किसी तरह का कष्ट तो नहीं हुआ ?"

सहसा मालकिन की दृष्टि दरवाजे की ओर गई। देखा, एक विधवा युवती डेढ़-दो वर्ष के बालक को गोद में लिये खड़ी है। उसे देखकर मालकिन ने पूछा—"यही प्रभावती है क्या ? आओ, बेटी आओ। तुम वहां अकेली क्यों खड़ी हो ? भीतर आओ।"

गोद का बालक सो गया था। संकोच करते हुए प्रभावती धीरे-धीरे भीतर आई; और विश्वेश्वर की स्त्री को अपनी गोद से बालक लेने का उसने इशारा किया।

विश्वेश्वर की स्त्री ने लड़के को गोद में ले लिया। प्रभावती ने मालकिन को प्रणाम किया। इसके बाद सिर नीचा किये हुए खड़ी रही। मालकिन थोड़ी देर तक प्रभा के मुँह की ओर चुपचाप देखती रहीं। फिर एक ठण्डी सांस लेकर बोलीं—"इतनी थोड़ी उम्र में तुम्हारी यह दशा ! हाय, हाय, यह तो मेरी कमला से भी उम्र में छोटी जान पड़ती है !"

कन्या के साथ उस मन्दभागिनी की तुलना करते ही उन्हें अमङ्गल होने का ध्यान हो आया। वे कांप उठीं। मन ही मन ईश्वर का स्मरण करते हुए गद्‌गद कण्ठ से बोलीं-"क्या करोगी बेटी, जो भाग्य में होता है वह अवश्य होता है। उदास मत

हुई बोली, "बेटी, ईश्वर तो रक्षक है ही, डर किस बात का? जिनके पास तुम्हें छोड़े जाती हूं वह कैसे हैं, यह तो इन तीन दिनों में तुमने भी समझ लिया होगा। तुम्हारे सम्बन्ध में जीजी (मालकिन) और मुझ से बातें हुई थीं। वह तुम पर विशेष कृपा रखती हैं। यहां तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा। खाने-पहिनने की ज़रा भी तकलीफ न होगी। वैसे तो जब तक तुम इस संसार में रहोगी, कष्ट ही है। ईश्वर ने चाहा तो सुशाल के सयाने होने पर तुम्हारा दुख कुछ दूर हो जायगा।"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद प्रभा ने पूछा—"दीदी, अब कब तक आओगी?"

"देश आने में अब फिर दो-तीन वर्ष लगेंगे। इससे पहले तो आना होता नहीं।"

"यहां आओगी?"

"हर दफे तो आना होता नहीं, किन्तु कभी-कभी अवश्य आती हूं।"

"इस बार जब देश जाने लगना, तो यहां अवश्य आना। नहीं तो मुलाकात भी न हो सकेगी।"

"अच्छा तो आकर तुम्हें देख जाऊंगी।"

विश्वेश्वर बाबू सपरिवार देश चले गये।

कुछ दिन बाद कमला के एक लड़की हुई। मालकिन अपना अधिकांश समय बैठे ही बैठे बिताया करती हैं। घर का

हो। यही तुम्हारा पुत्र है? (बच्चे की तरफ देखकर) आओ, बेटा आओ, मेरी गोद में आओ' कहकर उन्होंने बच्चे को गोद में ले लिया।

बच्चा उस अपरिचित रमणी की गोद में न ठहरकर रोने लगा।

"माँ की गोद में जायगा?" कहकर मालकिन ने उसे प्रभा को दे दिया।

फिर पूछा—"बच्चे का क्या नाम है?"

प्रभा ने कहा—"सुशीलकुमार।"

सुशीलकुमार! बड़ा सुन्दर नाम है। अच्छा, सुशीलबाबू, भूख तो नहीं लगी? दूध पिओगे?"

विश्वेश्वर की स्त्री ने कहा—"हाँ जीजी, दूध पियेगा। मेरी लड़की भी भूखी होगी। बोतल में जो दूध था वह तो रेल ही में दोनों पी गये। क्या घर में दूध होगा?"

"हां, दूध है। कमला, कढ़ाई में से दूध तो लेआ।"

बच्चों को दूध पिला चुकने पर उनकी मातायें स्नानादि करने लगीं।

तीन दिन बाद विश्वेश्वर बाबू सपरिवार घर जाने को तैयार हुए।

प्रभावती विश्वेश्वर बाबू की स्त्री के पास जाकर रोने लगी। बोली—"दीदी, अब मुझे क्या कहती हो?"

विश्वेश्वर की स्त्री अपने आंचल से प्रभा के आंसू पोछती

हुई बोली, "बेटी, ईश्वर तो रक्षक है ही, डर किस बात का ? जिनके पास तुम्हें छोड़े जाती हूं वह कैसे हैं, यह तो इन तीन दिनों में तुमने भी समझ लिया होगा। तुम्हारे सम्बन्ध में जीजी (मालकिन) और मुझ से बातें हुई थीं। वह तुम पर विशेष कृपा रखती हैं। यहां तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा। खाने-पहिनने की ज़रा भी तकलीफ न होगी। वैसे तो जब तक तुम इस संसार में रहोगी, कष्ट ही है। ईश्वर ने चाहा तो सुशाल के सयाने होने पर तुम्हारा दुख कुछ दूर हो जायगा।"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद प्रभा ने पूछा—"दीदी, अब कब तक आओगी !"

"देश आने में अब फिर दो-तीन वर्ष लगेंगे। इससे पहले तो आना होता नहीं।"

"यहां आओगी ?"

"हर दफे तो आना होता नहीं, किन्तु कभी-कभी अवश्य आती हूं।"

"इस बार जब देश जाने लगना, तो यहां अवश्य आना। नहीं तो मुलाकात भी न हो सकेगी।"

"अच्छा तो आकर तुम्हें देख जाऊंगी।"

विश्वेश्वर बाबू सपरिवार देश चले गये।

कुछ दिन बाद कमला के एक लड़की हुई। मालकिन अपना अधिकांश समय बैठे ही बैठे बिताया करती हैं। घर का

सारा कामकाज प्रभा के जिम्मे है। एक दिन मालकिन ने स्वामी से कहा—"यदि प्रभा न आती तो बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ता।"

तीन महीने बाद कमला अपनी ससुराल चली गई। अब केवल प्रभा ही इस घर में कन्या की भांति रहने लगी।

इस तरह देखते देखते पांच वर्ष बीत गये।

प्रायश्चित्त की सलाह

अगहन का महीना है। कुछ-कुछ सर्दी पड़ने लगी है। रविवार के दिन एक सेकेण्ड क्लास किराये की गाड़ी भवानीपुर की चावलपट्टी की सड़क पर एक दोमंजिले मकान के सामने आकर खड़ी हो गई। दरवाज़े पर साइनबोर्ड लगा हुआ है—"नरेन्द्रनाथ मुकुर्जी, वकील हाईकोर्ट।" गाड़ी से नीचे आकर एक प्रौढ़ व्यक्ति ने एक रमणी को उतारा और गाड़ीवाले से कहा—"गाड़ी खड़ी रखो, कालीघाट चलना होगा।" यह प्रौढ़ व्यक्ति हम लोगों के पूर्वपरिचित चूनापुकुर-लेन के हेमचन्द्र घोषाल हैं। गिरीशचन्द्र मुखोपाध्याय के पुत्र नरेन्द्रनाथ अब विकालत करते हैं। यह मकान उन्हीं का है। छोटे बाबू सुरेन्द्रनाथ यहां नहीं हैं। वह कूचबिहार में कालेज की प्रोफेसरी

करते हैं। उनकी स्त्री यहां रहती है। नरेन्द्र बाबू के दो कन्यायें तथा एक पुत्र है। छोटी बहू के अब भी कोई लड़का-लड़की नहीं हुआ।

सदर-दरवाज़ा खुला हुआ है। बैठके में वकील साहब के मुहर्रिर तथा चार-पांच मुवक्किल बैठे हैं। हेमबाबू स्त्री के साथ भीतर जा ही रहे थे कि स्लीपर पहने हुए नरेन्द्र बाबू आते हुए दिखाई दिये। "ओहो, ताऊजी आ गये—और बड़ीमां भी साथ में हैं।" यह कहकर उन्होंने झटपट प्रणाम किया।

हेम बाबू ने पूछा—"तुम्हारे पिता कैसे ?"

नरेन्द्र ने कहा—"पिताजी की तबियत तो आज अच्छी है। कल रात से ज्वर कुछ कम हुआ है।"

"कुछ चिन्ता की बात तो नहीं है ?"

"बीच में एक दिन हालत बहुत ख़राब हो गई थी; पर डाक्टरों का कहना है कि अब कोई भी डर की बात नहीं है। पिताजी को अब भी विश्वास नहीं होता।,,

हेम बाबू की स्त्री ने पूछा—"नरेन्द्र, बच्चे वगैरः तो मजे में हैं ? दोनों बहुएँ अच्छी तरह हैं ?"

नरेन्द्र ने कहा—"हां बड़ी अम्मा, सब लोग कुशल से हैं।,,

हेम बाबू ने पूछा—"सुरेन्द्र का क्या हाल है ? कोई चिट्ठी-विट्ठी आई है ?"

"हां, वह भी अच्छा है। आइए, ऊपर चलिए।"

"चलो। तुम्हारी चिट्ठी पाकर मुझे बड़ी चिन्ता हो गई। अच्छा, यह तो बताओ, गिरीश ने मुझे क्यों बुलाया ?"

नरेन्द्र ने कहा—"यह तो मैं नहीं कह सकता। बाबूजी ने जैसा कहा था, आपको लिख दिया था।

नरेन्द्र के पीछे पीछे यह दोनों स्त्री-पुरुष भी ऊपर चढ़ गये! एक सजे हुए कमरे में पलंग पर चार-पांच तकियों के सहारे पैर पर अलवान डाले गिरीश बाबू बैठे हुए हैं। पास ही एक टेबुल पर तश्तरी में मिश्री, बेदाना, औषधि की शीशी तथा थर्मामीटर रखा हुआ है। नरेन्द्र का लड़का कमरे में इधर-उधर दौड़ता हुआ खेल रहा है।

"कैसी तबियत है ?" कहकर हेमबाबू ने गिरीश का हाथ पकड़ लिया।

"आज तो अच्छा हूं" कहकर गिरीश ने प्रणाम किया। हेम बाबू की स्त्री को देखकर कहा—"अरे क्या भाभी को भी साथ लाये हो ? प्रणाम भाभी जी, बैठिए।"

हेम बाबू ने कहा—"मैं क्यों लाया हूं, वह स्वयं ही आई हैं। मेरे आने की बात मालूम होते ही इन्होंने रट लगा दी, मैं भी चलूंगी, मैं भी चलूंगी। किसी प्रकार मानी ही नहीं।"

बहूरानी ने नरेन्द्र के पुत्र को गोद में उठाकर कहा—"क्यों, मैं क्यों न आती। बहुत दिनों से देवर जी को देखा ही न था। भवानीपुर में हैं, यह केवल कान से सुना करती थी। इसी से मैंने आने की ज़िद की। पास ही कालीघाट है। माता काली

के भी दर्शन हो जायँगे।" यह कहते-कहते वह पलंग के पास आकर गिरीश के सिर पर हाथ रखते हुए बोलीं—"अब तो ज्वर नहीं है।"

गिरीश ने कहा—"पांच दिन, पांच रात ज्वर रहने के बाद कल रात को कुछ कम हुआ है।"

बहूरानी ने कहा—"अरे तुम्हारे शरीर को क्या हो गया! तुम तो एकदम बूढ़े ही हो गये! अपने दादा से भी बड़े जान पड़ते हो।"

गिरीश ने कहा—"दादा से मेरी तुलना कैसी? तुम न जाने कितनी देखरेख रखती हो! दादा की बात ही और है!—

बहूरानी ने कहा—"नहीं, हँसी की बात नहीं। सच कहती हूं। मैं ऐसा नहीं समझती थी कि तुम इतनी जल्दी बूढ़े हो जाओगे।"

इसी बीच में नरेन्द्र ने कुर्सी लाकर पलंग के पास रख दी। कहने लगे—"बड़ी अम्मा, बैठ जाइए। खड़ी कब तक रहिएगा?"

"नहीं, बैठूंगी नहीं, पहले जाकर बहुओं को देख आऊं। कहां हैं?" गिरीश की ओर देखकर कहा—"मैं बहुओं को देखने जाती हूं। तब तक तुम दोनों भाई बातें करो।" यह कहकर नरेन्द्र को साथ लेकर वह जनानखाने में चली गईं।

हेम बाबू अपने हाथों में गिरीश का हाथ लिये हुए बैठे थे। पूछने लगे—"मुझे क्यों बुलाया था? क्या कोई ख़ास बात है?"

"हां दादा, बहुत सी बातें करनी हैं।"

"कहो, क्या कहना चाहते हो?"

"कहूंगा। ज़रा मौका मिलने दीजिए।"

हेमबाबू ने कहा—"एक काम करना चाहिए। नरेन्द्र से कह दें, वह जाकर सब को कालीजी का दर्शन करा लावे, तब तक हम दोनों बातें करें।"

"ठीक है। भेज दीजिए।"

हेम बाबू पलँग से उतरकर कहने लगे—"अरे सुना, कालीजी जाने की इच्छा हो तो नरेन्द्र के साथ हो आओ। बेटा नरेन्द्र, जाओ अपनी बड़ी मां को दर्शन करा लाओ; और यदि बहुओं की इच्छा हो तो उन्हें भी साथ लेते जाओ।"

हेम बाबू की स्त्री ने कहा—"बहुएँ तो मानती ही नहीं। खाने के लिए मुझे विवश कर रही हैं। मैंने बहुतेरा कहा कि तुम्हारे श्वसुर की तबीअत ख़राब है। तुम लोग सब परेशान हो। इस झंझट में न पड़ो। पर वह एक नहीं मानतीं। बोलो, क्या कहते हो?"

हेम बाबू ने कहा—"जैसा वे कहें वैसा करना ही पड़ेगा।"

"बड़ी बहू मेरे साथ जायँगी। उसके बच्चे भी साथ जायँगे। छोटी बहू की इच्छा जाने की नहीं है। वह कहती है, मैं तब तक खाने का बन्दोबस्त कर रखती हूं।"

"जिसमें सुभीता हो, वैसाही करो" यह कहकर हेम बाबू

फिर गिरीश के पास चले आये।"

उन लोगों के चले जाने पर कुर्सी पर बैठते हुए हेम बाबू ने कहा—"अच्छा, अब कहो। क्या कहना चाहते हो?"

गिरीश ने कहा—"आज आठ वर्ष हुए, मैंने विवाह ही करना चाहा था। तुम्हें याद है न?"

"हां, याद क्यों नहीं है। उसके बाद यह भी सुना था, कि उस लड़की की शादी दूसरी जगह हो गई।"

"और कुछ नहीं सुना?"

हेम बाबू ने भौंहें सिकोड़ते हुए कहा—"और क्या? विशेष तो कुछ नहीं सुना। क्या हुआ?"

"अच्छा तो सब बातें खोलकर कहता हूं, सुनो।" यह कहकर प्रभा को नींबूवाले बाग में देखना, उसके निमित्त चित्त की चंचलता, स्वप्न-दर्शन भट्टाचार्यजी की स्वप्न-सम्बन्धी शास्त्र-व्याख्या, विवाह करने के लिए अपनी उत्सुकता, सम्बन्ध ठीक हो जाने पर भी विवाह का छूटना, राजकुमार के साथ विवाह होते समय मण्डप में पहुँचकर यज्ञोपवीत तोड़कर शाप देना, नालिश करके जगदीश की सारी सम्पत्ति को नीलाम कराना, फिर जगदीश की शोचनीय मृत्यु और उसके बाद प्रभा का विधवा होना इत्यादि सभी बातें गिरीश ने विस्तार-पूर्वक कहीं।

हेम बाबू ने पूछा—"विधवा होने के बाद प्रभा की क्या हालत हुई?"

विधवा होने के बाद का हाल भी गिरीश को मालूम था। उसकी माता और भाई की मृत्यु कैसे हुई, कलकत्ते में यदुनाथ बाबू के यहां भोजन बनाने के काम पर वह कैसे मुकर्रर हुई और किस प्रकार पुत्र-सहित वह अपने दिन व्यतीत कर रही है, इत्यादि सभी बातें उन्होंने हेम बाबू से कहीं।

सुनकर हेम बाबू ने कहा—"बड़े दुःख की बात है।"

गिरीश ने कहा—"दुःख की बात है, इसके लिए मैं इतना चिन्तित नहीं हूं। दुःख तो पृथ्वी पर अधिकांश मनुष्यों को है; किन्तु जब मैं यह देखता हूं कि इस सारे अनर्थ की जड़ मैं हूं, यह महा पाप मेरा ही किया हुआ है, तो मेरा चित्त घबड़ाने लगता है। मेरी आत्मा मुझे ही धिक्कारने लगती है। जिस समय रोग से मेरी हालत बहुत नाज़ुक हो गई थी, मैं यही सोचता था कि इस महा पाप का प्रायश्चित्त किये बिना ईश्वर के सामने कौन सा मुहँ दिखलाऊंगा। इस बार तो बच गया, ईश्वर के सामने जाने की नौबत ही न आई; किन्तु न जाने कब मर जाऊं। बूढ़ा हो ही गया हूं। यद्यपि उम्र में आप से छोटा हूं, फिर भी शरीर इतना टूट गया है कि अधिक दिन जीने की आशा नहीं। मैं चाहता हूं, मरने से पहले इस महा पाप का कुछ न कुछ प्रायश्चित्त कर डालूं। अब बताइए, इस सम्बन्ध में क्या करना चाहिए?"

हेम बाबू ने कुछ देर सोचकर कहा—"तुम्हारे ही श्राप से वह विधवा हुई है, यह तो असंगत बात है। उसके भाग्य में

विधवा होना लिखा था, इसी से यह विधवा हुई ; और उसने इतना कष्ट पाया। तुम्हारा शाप तो एक बहाना मात्र है।"

गिरीश ने कहा—"नहीं दादा, ऐसी बात नहीं है। यह तो केवल मन को समझा लेना है।"

हेम बाबू ने कहा—"अच्छा, ऐसा ही सही। जब तुम्हारे चित्त में यह बात दृढ़ता से जम गई है तो जिस तरह उस लड़की का दुःख दूर हो सके, वही करने से प्रायश्चित्त हो जायगा।"

गिरीश ने कहा—"यही बात तो सोचता हूं। क्या करना चाहिए, यह समझ में नहीं आता। जगदीश का मकान जो नीलाम में खरीदा था उसे अच्छी तरह मरम्मत कराकर हरिपद के नाम से रजिस्टरी करा दी है। हरिपद के तो कोई है नहीं अब उसका एक मात्र भानजा है। मेरी इच्छा है यदि कुछ रुपये—"

हेम बाबू ने कहा—"उसके और कोई भी तो नहीं है। इतनी कम उम्र की विधवा है कि उसके हाथ में अधिक रुपया देना भी ठीक नहीं।"

गिरीश ने कहा—"वह जिनके घर पर है, सुनता हूं कि वे बड़े भले आदमी हैं। उनकी स्त्री भी बहुत अच्छे स्वभाव की है। वे सब उसे अपनी कन्या के समान मानते हैं। किन्तु सुनो तो, उनके भी तो कोई पुत्र-सन्तति नहीं है। जब तक यदुबाबू इस संसार में हैं तभी तक उसके खाने-पहिरने का

प्रवन्ध है। उनके बाद भी उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो, ऐसा कुछ उपाय करना चाहिए।"

"तव जो सोचा हो, वही करो। कुछ रुपये उसे दे दो।"

"मेरी इच्छा है, एक दिन उसके पास जाकर क्षमा मांगते हुए उसे कुछ रुपये दे आऊं। अच्छा सुनो तो दादा, क्या वे मुझे उससे मिलने देंगे? मेरे गांव ही की तो लड़की है। और मैं उसके पिता का समवयस्क हूं। मुलाकात करने में हानि ही क्या है?"

"नहीं, इसमें तो कोई दोष नहीं मालूम होता; और न यही जान पड़ता है कि वे मुलाकात करने से रोकेंगे।"

"तब तो दादा, आप एक काम कीजिए। यदुबाबू कहां रहते हैं, उनका पता क्या है, यह सब तलाश कर के मुझे बताइए। मेकनिन मेकेंजी के दफ़्तर में यदुनाथ गङ्गोली काम करते हैं। बस, आपको पता तो लग जायगा न?"

"बड़ी सरलता से। कल दफ़्तर जाते ही आदमी भेजकर पता लगवा लूंगा।"

दस बजे तक सब लोग काली-दर्शन कर वापस आ गये। भोजन के बाद तीसरे पहर हेम बाबू अपनी पत्नी को लेकर घर चले गये।

इसके कुछ दिन बाद एक दिन गिरीश ने शहर में कम्पनी ागज़ को भुना कर हज़ार हज़ार रुपये के पांच क़िता नोट ादे। उसी रात को उन्होंने पांचों नोट और दानपत्र

इत्यादि एक बण्डल में बांधकर अपने ट्रंक में रख दिये।

एक दिन सवेरे उठकर पुत्र और बहुओं से कुछ काम का बहाना कर गिरीश ने शहर की ओर जाना निश्चित किया।

चलते समय उन्होंने नोटवाले बण्डल को बक्स से बाहर निकाला। उसे लेकर वह प्रस्थान करना ही चाहते थे कि न जाने क्या सोचकर एक बार शीशे में अपना मुहं देखने के लिए रुक रहे। शीशे में देखा, सिर के सब बाल सफेद हो गये हैं। आखें गड्ढे में घुस गई; और गालों पर सिकुड़न पड़ गई है। हड्डियां दिखाई पड़ती हैं। बहुत दिनों से हजामत न बनने से सफेद बालों की लम्बी दाढ़ी भी हो गई है। एक ठण्डी सांस लेकर उन्होंने मन ही मन कहा,बहूरानी ने बहुत ठीक कहा था कि मैं एकदम बूढ़ा हो गया हूं।

शीशे के सामने से हटकर "दुर्गा दुर्गा" स्मरण करते हुए गिरीश बाहर को रवाना हुए।

क्या भेंट होगी

यदुनाथ बाबू ने सवेरे चाय पीते समय स्त्री से कहा—"आज छुट्टी है। दफ़्तर बन्द है।"

स्त्री ने पूछा—"क्यों, आज क्या है?"

"आज आखिरी चहारशम्बा नामक एक मुसलमानी त्योहार है।"

"अच्छा हुआ जो छुट्टी है। न जाने कितने दिनों से सत्य-नारायण की कथा कहलाना चाहती थी। आज मौका मिला।"

"बड़ी अच्छी बात है। कथा सुन डालो।"

"केवल इतना ही कहने से काम न चलेगा। मुझे जिन जिन चीज़ों की आवश्यकता है, सब ला दो।"

"कौन कौन चीज़ों की ज़रूरत है। सब एक कागज़ पर लिख दो। अभी लाये देता हूं।"

मलकिन ने प्रभा से कहा—"बेटी, कागज़-पेन्सिल तो ले आओ। आज कथा होगी। जो चीज़ें मैं बोलती जाऊं, तुम लिखती जाओ।"

प्रभा कागज़-पेन्सिल ले आई। मलकिन ने एक छोटे से भोज की सामग्री लिखा दी।

यदुबाबू ने कहा—"जान पड़ता है, कथा बहुत बड़ी होगी।"

मालकिन ने कहा—"बड़ी कथा! आज-कल तो कलकत्ते में ऐसी ही होती है। अब पहले की तरह केवल फल और गुड़ से कथा नहीं हुआ करती।"

चीज़ों की फेहरिस्त लेकर नौकर के साथ यदुबाबू बाज़ार की ओर रवाना हुए। प्रभा का पुत्र सुशीलकुमार भी उनके साथ गया। मालकिन ने कहा—"प्रभा, तू जाकर नहा ले। मैं तब तक पान लगा रखूं।"

स्नान कर के प्रभा अभी अपने गीले बाल सुखा ही रही थी कि बाहर सदर-दरवाज़े से आवाज़ आई—"गङ्गोली बाबू घर पर हैं?"

दासी ने भीतर से जवाब दिया—"बाबू घर में नहीं हैं।"

फिर आवाज़ आई—"कहां गये हैं?"

दासी ने कहा—"बाज़ार।"

"दरवाज़ा तो खोल दो।"

दासी कुछ खिझलाकर मालकिन की ओर देखते हुए बोली—"क्या काम है? बाबू घर में नहीं फिर भी दरवाज़ा खुलाना चाहते हो?"

फिर आवाज़ आई—"मैं बहुत दूर से आ रहा हूं। बाबू जब तक न आयेंगे, कमरे में बैठा रहूंगा।"

मालकिन ने दासी से कहा—"पूछो, कहां से आप आये हैं?"

बैठे हुए हैं। बीच बीच में दरवाज़े से बाहर की ओर झांकने लगते हैं कि बाबू आते हैं या नहीं।

इसी प्रकार कुछ देर इन्तज़ार कर चुकने पर यदुबाबू आ गये। उनके साथ सात वर्ष का एक बालक देखकर गिरीश ने समझ लिया, यही सुशीलकुमार है।

गिरीश तख्त पर से उठ खड़े हुए। नमस्कार करते हुए बोले—"आप ही का नाम यदुनाथ गङ्गोपाध्याय है? मैं आपसे मिलने के लिए आया हूं।"

नौकर सुशील को लेकर भीतर चला गया। यदुबाबू ने कमरे में आते हुए पूछा—"महाशय, आपका क्या नाम है? कहां से आप आये?"

नाम-धाम सुनकर यदुबाबू की भौं सिकुड़ गई। अपनी स्त्री से उन्होंने प्रभा का सब हाल सुना था। यह नाम भी उन्हें याद था। बोले—"आपके आने का क्या मतलब?"

यदुबाबू की फटी-फटी बातें सुनकर गिरीश समझ गये कि यह मेरे बारे में सब कुछ जानते हैं।

गिरीश ने पूछा—"आपने मेरा नाम सुना होगा?"

"हां, सुन चुका हूं।"

गिरीश ने कांपते हुए स्वर से कहा—"मैं कितना बड़ा पापी नराधम हूं, यह तो आप जानते होंगे?"

यह बात सुनते ही यदुबाबू चौंक पड़े। यह पापी नराधमों की सी चेष्टा नहीं है। वे आगन्तुक के मुँह की ओर

देखने लगे। उन्हें उसके मुँह पर निष्ठुरता का भाव न देख पड़ा। चेहरे पर सरलता, दोनों नेत्रों में कोमलता और ओठों में एक प्रकार की व्याकुलता दिखाई दी। मानों वह कह रहे हैं—"क्षमा करो, मुझे क्षमा करो!"

यदुबाबू का हृदय पिघल उठा। उन्होंने कहा—"मैं सब जानता हूं। अर्थात् प्रभा पर जो-जो बीती है, मैंने अपनी स्त्री से सब सुना है।" यह कहकर वह उसी तख्त पर बैठ गये।"

गिरीश बाबू ने कहा—"आप सब सुन चुके हैं? नहीं यदुबाबू, अभी आपने सब बातें नहीं सुनी होंगी। आपने सुना होगा, मैंने प्रभा को शाप दिया इससे उसकी यह दशा हो गई। परन्तु उस शाप ने आठ वर्षों के भीतर मेरी क्या दशा की यह आपने नहीं सुना होगा। मुझे आप जैसा बूढ़ा देख रहे हैं वास्तव में मैं उतना बूढ़ा नहीं हूं। मेरे मानसिक कष्ट ने मुझे ऐसा बूढ़ा बना दिया। मुझे न तो दिन को चैन मिलती है, न रात को नींद आती है। खाना-पीना हराम हो रहा है। एक अबोध बालिका जिसका कोई दोष न था, जिसने मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा था उसका सर्वनाश मैंने किया। क्रोध मनुष्य का शत्रु होता है। उसी शत्रु ने पलभर में मुझे हिंसक जन्तु बना दिया। हिंसक जन्तु ही नहीं, वरन् उससे भी अधम बना दिया। सांप को जब तक कोई छेड़ता नहीं, वह किसी को नहीं काटता। शेर जिसे खाता है, एकदम खा लेता है। सारी ज़िन्दगी दुख नहीं देता। इतना कहकर उन्होंने दोनों

बैठे हुए हैं। बीच बीच में दरवाज़े से बाहर की ओर झांकने लगते हैं कि बाबू आते हैं या नहीं।

इसी प्रकार कुछ देर इन्तज़ार कर चुकने पर यदुबाबू आ गये। उनके साथ सात वर्ष का एक बालक देखकर गिरीश ने समझ लिया, यही सुशीलकुमार है।

गिरीश तख्त पर से उठ खड़े हुए। नमस्कार करते हुए बोले—"आप ही का नाम यदुनाथ गङ्गोपाध्याय है? मैं आपसे मिलने के लिए आया हूं।"

नौकर सुशील को लेकर भीतर चला गया। यदुबाबू ने कमरे में आते हुए पूछा—"महाशय, आपका क्या नाम है? कहां से आप आये?"

नाम-धाम सुनकर यदुबाबू की भौं सिकुड़ गई। अपनी स्त्री से उन्होंने प्रभा का सब हाल सुना था। यह नाम भी उन्हें याद था। बोले—"आपके आने का क्या मतलब?"

यदुबाबू की फटी-फटी बातें सुनकर गिरीश समझ गये कि यह मेरे बारे में सब कुछ जानते हैं।

गिरीश ने पूछा—"आपने मेरा नाम सुना होगा?"

"हां, सुन चुका हूं।"

गिरीश ने कांपते हुए स्वर से कहा—"मैं कितना बड़ा पापी नराधम हूं, यह तो आप जानते होंगे?"

यह बात सुनते ही यदुबाबू चौंक पड़े। यह पापी नराधमों की सी चेष्टा नहीं है। वे आगन्तुक के मुँह की ओर

देखने लगे। उन्हें उसके मुँह पर निष्ठुरता का भाव न देख पड़ा। चेहरे पर सरलता, दोनों नेत्रों में कोमलता और ओठों में एक प्रकार की व्याकुलता दिखाई दी। मानों वह कह रहे हैं—"क्षमा करो, मुझे क्षमा करो !"

यदुबाबू का हृदय पिघल उठा। उन्होंने कहा—"मैं सब जानता हूं। अर्थात् प्रभा पर जो-जो बीती है, मैंने अपनी स्त्री से सब सुना है।" यह कहकर वह उसी तख्त पर बैठ गये।"

गिरीश बाबू ने कहा—"आप सब सुन चुके हैं ? नहीं यदुबाबू, अभी आपने सब बातें नहीं सुनी होंगी। आपने सुना होगा, मैंने प्रभा को शाप दिया इससे उसकी यह दशा हो गई। परन्तु उस शाप ने आठ वर्षों के भीतर मेरी क्या दशा की यह आपने नहीं सुना होगा। मुझे आप जैसा बूढ़ा देख रहे हैं वास्तव में मैं उतना बूढ़ा नहीं हूं। मेरे मानसिक कष्ट ने मुझे ऐसा बूढ़ा बना दिया। मुझे न तो दिन को चैन मिलती है, न रात को नींद आती है। खाना-पीना हराम हो रहा है। एक अबोध बालिका जिसका कोई दोष न था, जिसने मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा था उसका सर्वनाश मैंने किया। क्रोध मनुष्य का शत्रु होता है। उसी शत्रु ने पलभर में मुझे हिंसक जन्तु बना दिया। हिंसक जन्तु ही नहीं, वरन् उससे भी अधम बना दिया। सांप को जब तक कोई छेड़ता नहीं, वह किसी को नहीं काटता। शेर जिसे खाता है, एकदम खा लेता है। सारी जिन्दगी दुख नहीं देता। इतना कहकर उन्होंने दोनों

हाथों से अपना मुँह ढक लिया।

यदुबाबू क्या उत्तर दें, क्या करें, कुछ भी न सोच सके। किन्तु बिना कुछ कहे भी नहीं बनता, इसी से वह बोले—"महाशय, आप इतना पश्चात्ताप क्यों करते हैं? जो होना था, वह तो हो ही गया। उसमें किसी का कुछ ज़ोर नहीं।

गिरीश ने मुँह उठाकर कहा—"यही तो मुश्किल है। अच्छा, अब यह सुनिए, मैं यहां क्यों आया हूं। हां, आपका कुछ हर्ज तो नहीं होता?

"नहीं, आज मेरा दफ़र बन्द है।"

"इसी से तो आज आया हूं। उस बेचारी का सर्वनाश मैंने किया, उसकी क्षति-पूर्ति यदि कुछ हो सके तो मैं करना चाहता हूं यह कहकर उन्होंने नोटों का बण्डल खोलना शुरू किया। बण्डल खोलकर सब चीजें यदुबाबू के हाथ में रखते हुए बोले—"मेरी इच्छा है, यह प्रभा को दे दूं। आप उसे अपनी कन्या के समान मानते हैं, उसे किसी तरह का कष्ट नहीं, यह सब मैं जानता हूं। ईश्वर ने उसे एक पुत्र दिया है। यदि वह जीवित रहा तो प्रभा का सब दुःख मिट जायगा। लड़के के पढ़ने-लिखने में ख़र्च पड़ेगा ही, इसलिए यह पांच हजार रुपया प्रभा को देता हूं; और उसके बाप का घर, जो मैंने नीलाम करा लिया था, मरम्मत कराकर प्रभा के भाई के नाम रजिस्टरी करा दी है। उस वंश में और तो कोई नहीं, केवल यही लड़का है। अपने मामा की सम्पत्ति का

हक़दार है। इसलिए यह कागज़ भी प्रभा को देना चाहता हूं।"

यदुबाबू कागज़-पत्र गिरीश के हाथों में देते हुए बोले—"बड़ी अच्छी बात है।"

गिरीश ने कहा—"मैं एक बार प्रभा से भेंट करना चाहता हूं।"

यदुबाबू ने कुछ सोचकर कहा—"मुझे तो कोई आपत्ति नहीं, यदि प्रभा राज़ी हो—"

गिरीश ने घबड़ाकर पूछा—"यदुबाबू, वह मिलने को राज़ी होगी?"

यदुबाबू ने गर्दन झुकाकर कहा—"मुझे तो सन्देह है।"

गिरीश ने कुछ देर चुप रहने के बाद कहा—"आप एक बार चेष्टा कीजिए। यदि वह भेंट करने को राज़ी हो जाय तो अच्छा है। नहीं तो फिर यह सब आप ही को सौंपकर चला जाऊंगा।"

यदुबाबू ने मन ही मन सोचा, प्रभा इनका नाम सुनकर भेंट करने को राज़ी न होगी। किन्तु यह सब चीज़ें उसी के हाथ में सौंपी जायँ तो ठीक होगा। मेरे हाथ में आने से इनके मन में शंका बनी रहेगी कि प्रभा को यह दें या न दें। यह सोचकर वे बोले—"सुनिए गिरीश बाबू, मेरा ख़याल है, आपका नाम सुनकर प्रभा भेंट करने को राज़ी न होगी। यदि आप आज्ञा दें तो उससे मैं यह कहूं कि तुम्हारे गांव के एक बूढ़े ब्राह्मण तुम्हारे

पिता के मित्र, तुमसे भेंट करने आये हैं। इस तरह जब वह आपके सामने आ जावे तो जो कुछ आप कहना अथवा देना चाहें, कहकर दे दीजिएगा।"

गिरीश ने कहा—"बहुत ठीक। अब आप दया करें—"

"लो, मैं जाता हूं"—"कहकर यदुबाबू घर के भीतर चले गये।

जीवन का मूल्य

दासी ने आकर गिरीश से कहा—"बाबू, ऊपर चलिए।"

"ऊपर चलूं अच्छा "कहकर गिरीश ने कांपते हुए हाथों से पाचों नोट और दानपत्र को इकट्ठा कर भली भांति बांध लिया। बायें हाथ में बण्डल और दाहने में छड़ी लेकर दासी के पीछे पीछे खांसते हुए गिरीश बाबू ऊपर पहुँचे। दासी ने एक कमरे में जाने का संकेत किया। भीतर जाकर गिरीश ने देखा, टेबुल के पास कई कुर्सियां रखी हुई हैं। एक पर यदुबाबू बैठे हैं। गिरीश को देखकर वह उठ खड़े हुए। बोले—"गिरीश बाबू, मैं जाकर प्रभा को भेजता हूं। आप बैठिए, मैं इस कमरे के बगलवाले कमरे में रहूंगा।"

गिरीश बैठे नहीं। यदुबाबू के चले जाने पर वह दरवाज़े

के जंगले से बाहर की ओर देखने लगे।

इसी बीच में धीरे धीरे प्रभा उस कमरे में आई। उसने गिरीश के मुँह की ओर देखा; पर पहचान न सकी। गाँव में वह हमेशा इन्हें देखती रही हो यह बात भी न थी। कभी कभी उसने दूर से अवश्य देखा था, सो भी आठ वर्ष हो गये।

गिरीश ने एकाएक पीछे फिरकर देखा। मानो किसी ने विषाद की प्रतिमा गढ़ कर उनके सामने खड़ी कर दी। आठ वर्ष हुए, प्रभा को बाल सुखाते हुए नीबू के पेड़ के नीचे जिस रूप में उन्होंने देखा था, वह भी उन्हें स्मरण हो आया।

प्रभा अब पहले से कुछ सयानी है, रङ्ग भी पहले से अब उज्ज्वल हो गया है। तब वह किशोरी थी, अब पूर्ण युवती है। यदि गिरीश इसे पहले से जानते न होते तो पहचान भी न सकते।

धीरे धीरे गिरीश प्रभा के निकट बढ़ने लगे। कुछ देर तक वह व्याकुल दृष्टि से प्रभा के मुँह की ओर देखते रहे। इसी बीच न जाने कितने प्रकार की भावनायें उनके हृदय में पैदा हुईं। क्या यह वही प्रभा है जिसकी लावण्यमयी मूर्त्ति का ध्यान कर मन ही मन प्रसन्न हुआ करते थे, जिस पर कितने ही दिनों तक उनका जीवन-सर्वस्व न्योछावर था, जिसके क्षणिक दर्शन की लालसा उनके मन को आन्दोलित कर देती थी, जिसकी चर्चा कानों को मधुर

पिता के मित्र, तुमसे भेट करने आये हैं। इन
आपके सामने आ जावे तो जो कुछ आप कह
चाहें, कहकर दे दीजिएगा।"

गिरीश ने कहा—"बहुत ठीक। अब आप
"लो, मैं जाता हूं"—"कहकर यदुबाबू
चले गये।

जीवन का मूल्य

लिया। खोलकर वह बोली—"यह तो नोट हैं। यह रक़म किसकी है?"

गिरीश ने कहा—"गिन लो। यह पांच किता नोट हज़ार हज़ार रुपये के हैं। दूसरा काग़ज़ जो देख रही हो, तुम्हारे मकान का दानपत्र है।"

प्रभा ने कहा—"यह सब चीज़ें आप मुझे क्यों देते हैं? आप कौन हैं?"

गिरीश ने कहा—"ये पांच हज़ार के नोट मैं तुम्हें देता हूं। देखो, संसार में सदा एक से दिन किसी के नहीं रहते। ज़रूरत के वक्त ये नोट तुम्हारे काम आयेंगे। तुम्हारे एक पुत्र है। उसे अभी संसार में बहुत-कुछ देखना है।"

प्रभा इस दफे कुछ झुँझलाकर बोली—"यह सब मैं समझती हूं। किन्तु यह तो बताइए, आप कौन हैं! यह रक़म मुझे क्यों देते हैं?"

गिरीश सिर नीचा किये हुए कुछ देर तक चुप रहकर बोले—"तुम मुझे जब नहीं पहचानती तो क्या कहकर मैं अपना परिचय दूं, मेरी समझ में नहीं आता। मैं और कोई नहीं, तुम्हारा सर्वनाश करनेवाला तुम्हारे गांव का निवासी—गिरीश मुखोपाध्याय हूं।"

यह सुनते ही प्रभा कांपने लगी। उसके हाथों से नोटों का बण्डल छूट गिरा। मस्तक पर पसीने की बूंदें आगई।

प्रभा की दशा देखकर गिरीश सोचने लगे, कहीं यह मूर्छित

और जिसका नामोच्चारण शरीर को पुलकित कर देता था। हाय! यदि यह दुर्घटनायें न होतीं तो—

गिरीश ने मन ही मन सोचा, "हृदय पर जो घाव लगा था वह कुछ सूख चला था। यहां आकर मैंने फिर उसे ताज़ा कर दिया, यह ठीक नहीं किया। मैं इसे क्यों देखने आया।

एक वार फिर उस विषादमयी मूर्ति की ओर देखकर गिरीश ने पूछा—"क्या तुम्हारा ही नाम प्रभावती है?"

प्रभा ने कुछ न कहकर केवल सिर हिलाते हुए इशारा किया। मानो वह "हां" कहती है।

"क्या, तुम मुझे पहचानती हो?"

अस्फुट स्वर में उसने कहा—"जी नहीं।"

"मेरा मकान त्रिवेणी में है। तुम्हारा पुत्र सुशीलकुमार क्या करता है?"

"भोजन कर रहा है।"

गिरीश ने बगल में से नोटों का बंडल निकालकर कांपते हुए हाथों से प्रभा के सामने रखकर कहा—"यह उठाकर देखो।"

कागज़ों में क्या है, प्रभा यह कुछ भी न जानती थी। सोचने लगी, इसे लूं या न लूं। गिरीश ने कहा—"उठा लो, प्रभावती, उठा लो। यह कोई ख़राब चीज़ नहीं है। खोलकर देखो, क्या है?"

प्रभा ने शंकित होकर कांपते हुए हाथों से बण्डल को उठा

लिया। खोलकर वह बोली—"यह तो नोट हैं। यह रक़म किसकी है?"

गिरीश ने कहा—"गिन लो। यह पांच किता नोट हज़ार हज़ार रुपये के हैं। दूसरा काग़ज़ जो देख रही हो, तुम्हारे मकान का दानपत्र है।"

प्रभा ने कहा—"यह सब चीजें आप मुझे क्यों देते हैं? आप कौन हैं?"

गिरीश ने कहा—"ये पांच हज़ार के नोट मैं तुम्हें देता हूं। देखो, संसार में सदा एक से दिन किसी के नहीं रहते। ज़रूरत के वक्त ये नोट तुम्हारे काम आयेंगे। तुम्हारे एक पुत्र है। उसे अभी संसार में बहुत-कुछ देखना है।"

प्रभा इस दफे कुछ झुँझलाकर बोली—"यह सब मैं समझती हूं। किन्तु यह तो बताइए, आप कौन हैं? यह रक़म मुझे क्यों देते हैं?"

गिरीश सिर नीचा किये हुए कुछ देर तक चुप रहकर बोले—"तुम मुझे जब नहीं पहचानती तो क्या कहकर मैं अपना परिचय दूं, मेरी समझ में नहीं आता। मैं और कोई नहीं, तुम्हारा सर्वनाश करनेवाला तुम्हारे गांव का निवासी—गिरीश मुखोपाध्याय हूं।"

यह सुनते ही प्रभा कांपने लगी। उसके हाथों से नोटों का बण्डल छूट गिरा। मस्तक पर पसीने की बूंदें आगईं।

प्रभा की दशा देखकर गिरीश सोचने लगे, कहीं यह मूर्छित

न हो पड़े। वे जो कुछ कहना चाहते थे, सब भूल गये। उन्हें कुछ भी याद न रहा। सारा स्कीम उलट-पलट गई। क्या कहें, क्या न कहें, इसका विचार न करते हुए वे जल्दी से बोल उठे—"देखो प्रभावती, जन्म-मृत्यु ईश्वराधीन है। मेरा कुछ दोष नहीं। कभी कभी मनुष्य निमित्त-मात्र हो जाता है। तुम्हारे सर्वनाश का निमित्त—मूल कारण मैं हुआ, यही दुख की बात है।"

इतना कह चुकने पर गिरीश को ज्ञान हुआ। उन्हें जो कुछ कहना चाहिए उसे न कहकर वह कुछ और ही कह गये। जो बात दूसरे लोग कहकर उन्हें समझाते थे—किन्तु स्वयं वे न मानते थे--इस समय वही उन्होंने प्रभा से कह डाली।

प्रभा की सांस ज़ोर-ज़ोर से चलने लगी। वह दोनों हाथ मींजते हुए बोली—दोष नहीं है? आपने जो स्वयं किया उसे ईश्वर पर मढ़े देते हैं; और कहते हैं, इसमें मेरा दोष नहीं है!"

गिरीश ने देखा, क्रोध के मारे प्रभा का मुहँ लाल हो रहा है, आँखें ख़ून से भरी दिखाई देती हैं; और नाक से सांस ज़ोरों के साथ निकलती है।

उसका यह भाव देखकर गिरीश के दुर्बल मस्तिष्क में और भी कमज़ोरी पैदा होगई। उन्होंने कहा—"जो हुआ, वह तो हो ही गया। मैंने जो तुम्हें हानि पहुँचाई उसकी पूर्ति करने के लिए मैं यह पांच हज़ार रुपये लाया हूं।"

यह सुनते ही क्रोध, घृणा और अपमान से प्रभा की आंखों से आंसू गिरने लगे। नोटों का बण्डल अब भी उसके पैरों के पास पड़ा हुआ था। उसकी इच्छा हुई कि उसे ज़ोर से लात मारकर दूर फेंक दे।

किन्तु प्रभा ने ऐसा नहीं किया। स्वयं कुछ पीछे हटकर ऊपर देखते हुए वह ज़ार से बोली—"आपने जिसका प्राण हरण किया है, क्या उसके जीवन का मूल्य—ये पांच हज़ार रुपये—मुझे देने आये हैं? मैं आपके रुपये लूं! क्या आपका यह कहना उचित है? मुझे खाने-पीने की चाहे जो कुछ तकलीफ़ हो, यहां तक कि मेरा प्यारा पुत्र भी यदि भूक से मरने लगे, तब भी मैं आपका रुपया इन हाथों से नहीं छू सकती।"

प्रभा का सिर चक्कर खाने लगा। दीवार का सहारा लेते हुए जैसे-तैसे वह कमरे से बाहर चली गई।

न हो पड़े। वे जो कुछ कहना चाहते थे, सब भूल गये। उन्हें कुछ भी याद न रहा। सारा स्कीम उलट-पलट गई। क्या कहें, क्या न कहें, इसका विचार न करते हुए वे जल्दी से बोल उठे—"देखो प्रभावती, जन्म-मृत्यु ईश्वराधीन है। मेरा कुछ दोष नहीं। कभी कभी मनुष्य निमित्त-मात्र हो जाता है। तुम्हारे सर्वनाश का निमित्त—मूल कारण मैं हुआ, यही दुख की बात है।"

इतना कह चुकने पर गिरीश को ज्ञान हुआ। उन्हें जो कुछ कहना चाहिए उसे न कहकर वह कुछ और ही कह गये। जो बात दूसरे लोग कहकर उन्हें समझाते थे—किन्तु स्वयं वे न मानते थे—इस समय वही उन्होंने प्रभा से कह डाली।

प्रभा की सांस ज़ोर-ज़ोर से चलने लगी। वह दोनों हाथ मींजते हुए बोली—दोष नहीं है? आपने जो स्वयं किया उसे ईश्वर पर मढ़े देते हैं; और कहते हैं, इसमें मेरा दोष नहीं है!"

गिरीश ने देखा, क्रोध के मारे प्रभा का मुहँ लाल हो रहा है, आँखें ख़ून से भरी दिखाई देती हैं; और नाक से सांस ज़ोरों के साथ निकलती है।

उसका यह भाव देखकर गिरीश के दुर्बल मस्तिष्क में और भी कमज़ोरी पैदा होगई। उन्होंने कहा—"जो हुआ, वह तो हो ही गया। मैंने जो तुम्हें हानि पहुँचाई उसकी पूर्ति करने के लिए मैं यह पांच हज़ार रुपये लाया हूं।"

यह सुनते ही क्रोध, घृणा और अपमान से प्रभा की आंखों से आंसू गिरने लगे। नोटों का बण्डल अब भी उसके पैरों के पास पड़ा हुआ था। उसकी इच्छा हुई कि उसे ज़ोर से लात मारकर दूर फेंक दे।

किन्तु प्रभा ने ऐसा नहीं किया। स्वयं कुछ पीछे हटकर ऊपर देखते हुए वह ज़ोर से बोली—"आपने जिसका प्राण हरण किया है, क्या उसके जीवन का मूल्य—ये पांच हज़ार रुपये—मुझे देने आये हैं? मैं आपके रुपये लूं! क्या आपका यह कहना उचित है? मुझे खाने-पीने की चाहे जो कुछ तकलीफ़ हो, यहां तक कि मेरा प्यारा पुत्र भी यदि भूक से मरने लगे, तब भी मैं आपका रुपया इन हाथों से नहीं छू सकती।"

प्रभा का सिर चक्कर खाने लगा। दीवार का सहारा लेते हुए जैसे-तैसे वह कमरे से बाहर चली गई।